मेघनाद साहा

राष्ट्रीय जीवनचरित

मेघनाद साहा

(भविष्य द्रष्टा वैज्ञानिक)

शांतिमय चटर्जी
एणाक्षी चटर्जी

अनुवाद
रा. प्र. जायसवाल

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-2468-3

पहला संस्करण : 1988
पहली आवृत्ति : 1998 *(शक 1920)*

रु. 35.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क,
नई दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित

विषय सूची

प्रस्तावना

संसार भर में, वैज्ञानिक अनुसंधान की गति स्तंभित करने वाली सीमा तक पहुंच गई है। एक ओर तो इसमें विविधता आ गई है और दूसरी ओर अधिक परिष्कार। पर केवल अर्ध-शताब्दी पहले अकेला वैज्ञानिक किसी छोटी सी प्रयोगशाला में अपना आडंबरहीन काम करता रहता और उस पर कोई भी गंभीरता से ध्यान नहीं देता। अनुसंधान व्यक्तिगत प्रयास से कैसे एकाएक अत्यंत संगठित कार्य में विकसित हो गया, यह स्वयं में एक आकर्षक विषय है। जे.डी. बर्नल ने पहली अवस्था को 'रूमानी' की संज्ञा दी है, क्योंकि यह विशिष्ट व्यक्तियों के इर्द-गिर्द चलता था। हमारे देश में ये प्रावस्थाएं परस्पर व्यापी हैं। पांचवें दशक के पिछले भाग में, भारत में संगठित अनुसंधान के तीन बड़े साम्राज्य स्थापित किए गए—वैज्ञानिक तथा तकनीकी अनुसंधान परिषद, रक्षा प्रयोगशालाएं, और परमाणु ऊर्जा आयोग। परंतु विश्वविद्यालयों में एकल वैज्ञानिक की परपरा चलती रही। सरकार द्वारा विज्ञान का संगठन बड़े पैमाने पर किए जाने के पहले ही इलाहाबाद के एक प्रतिभाशाली, युवा वैज्ञानिक ने चौथे दशक में इसका स्वप्न देखने का साहस किया। चौंतीस वर्ष की ही आयु में एफ. आर. एस. बनकर वह पहले ही प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। अति निष्ठावान विद्यार्थियों की एक छोटी सी टोली से प्रोत्साहन पाकर उसने अनुसंधान संस्थाओं के ऐसे संगठित वैज्ञानिक समुदाय का सपना देखा जो पश्चिमी जगत के श्रेष्ठतम से प्रतिस्पर्धा कर सके और देश की वैज्ञानिक जनशक्ति को रचनात्मक कार्य में लगा सके। उसके सपने में हमारी बड़ी नदियों के नियोजन का प्रमुख स्थान था। वह स्वप्नद्रष्टा मात्र बनकर नहीं रुक गया वरन अपने गतिशील और सक्रिय जीवन के प्रत्येक क्षण को उसने उपात्तों के चयन, वैज्ञानिक लेखों की रचना, और दूसरों को सहमत बनाने के लिए भरसक प्रयत्न करने में लगाया। और यह व्यक्ति था मेघनाद साहा, जिसको याद करने के लिए उसकी वैज्ञानिक श्रेष्ठता ही यथेष्ठ है। परंतु साहा में इससे भी अधिक गुण थे, वह व्यक्ति ऐसा था जिसमें अदम्य गतिशीलता और उत्साह कूट कूट कर भरा था।

इतने छोटे आकार के जीवनचरित से उनके साथ न्याय नहीं किया जा सकता। इसके द्वारा तो केवल उनके बहुमुखी क्रियाकलापों का उल्लेख और इनके

पीछे जो मनुष्य था उसका क्षणिक आभास देने का प्रयास भर किया जा सकता है। उस मनुष्य और उसकी प्रेरणाओं को उचित रीति से समझने के लिए पूर्ण दैर्घ्य एवं विशद अध्ययन की आवश्यकता है।

6 अक्तूबर 1954 को मेघनाद साहा के साठवें जन्म-दिवस पर डा. एस. एन. सेन[1] द्वारा संपादित एक स्मारक ग्रंथ "मेघनाद साहा–उनका जीवन, कार्य एवं दर्शन" प्रकाशित किया गया। इस पुस्तक की पांडुलिपि का निरीक्षण स्वयं डा. साहा ने किया था। इस ग्रंथ तथा डा. डी.एस. कोठारी[2] द्वारा लिखित पुस्तक 'मेघनाद साहा' से हमारी पुस्तिका में सूचना तथा अन्य चीजें मुक्त रूप से ली गई हैं और यथासंभव उनका संदर्भ दिया गया है। डी.एम. बोस का साहा स्मारक भाषण[3], स्वयं साहा के लेखों के संग्रह[4,5,6] जगजीत सिंह[7] और डी.एम. मिश्र[8] द्वारा लिखित छोटे छोटे जीवनचरित तथा राबर्ट एंडरसन[9] का पीएच.डी. निबंध भी सहायक सिद्ध हुए हैं।

साहा कुटुंब के सदस्यों, विशेषकर प्रसनजित साहा, चित्रा राय, रामेश्वर दास, काकी मां (लावण्यप्रभा साहा) एवं अजित कुमार साहा से प्राप्त सब प्रकार की सहायता हम साभार स्वीकार करते हैं। मेघनाद साहा के बचपन तथा पृष्ठभूमि संबंधी बातें माशीमों अर्थात स्वर्गवासिनी राधारानी साहा द्वारा मिलीं जिन्होंने स्वास्थ्य ठीक न होने पर भी इस पर प्रकाश डालना स्वीकार किया। प्रोफेसर अजित कुमार साहा के हम अत्यंत ऋणी हैं जिन्होंने उन स्रोतों तक पहुंचने दिया जिन्हें प्राप्त करना अन्यथा कठिन था। डा. बी.डी. नाग चौधरी और श्रीमती दीपाली नाग भी स्वेच्छा से सहायता प्रदान करने के लिए हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

शांतिमय चटर्जी
एणाक्षी चटर्जी

1

नंगे पैर बालक
(1893-1910)

ढाका से पैंतालिस किलोमीटर दूर, एक गांव को चतुर्दिक घेरते हुए कनसाई नदी दक्षिण से उत्तर पूर्व की ओर बहती चली जाती है। एक शताब्दी पूर्व यह गांव बलियादी के मुसलमान नवाबों का था। जमींदार ढाका में रहना अधिक पसंद करते थे और अपना काम कारिंदों द्वारा कराते थे। उनके सर्वोपरि प्रभाव के होने पर भी सिवरातली मुख्य रूप से साहा लोगों की आबादी थी। इसके अधिकांश निवासी छोटे छोटे व्यापारी और कारोबारी थे। आसपास अन्य छिट-पुट गांव थे, जिनकी परस्पर दूरी पांच छह किलोमीटर थी। अन्य सैकड़ों गांवों से इस गांव की कोई दूसरी विशेषता नहीं थी सिवाय इस बात के कि सिवरातली में ही 6 अक्तूबर 1893 को मेघनाद साहा ने जन्म लिया।

मानसून के दिनों में नदी तटबंधों को पार कर खेतों और मैदानों को इतना जलमग्न कर देती थी कि उन तक पहुंचना कठिन हो जाता। प्रत्येक घर को एक नाव रखना आवश्यक होता था। जब पानी घटने लगता तो अपने साथ कुछ मिट्टी बहा ले जाता था। मिट्टी के कटाव को रोकने के लिए लोग अपने घरो के चारों ओर लट्ठे गाड़ते या वृक्ष रोपते थे। नदी के प्रकोप से बचने के लिए कभी-कभी गैल्वंनीकृत लोहे की चादरों से चारदिवारी बनाई जाती थी। गर्मी के दिनों में नदी सूख जाती थी और नदी से अधिक नहर जैसी दिखाई पड़ती थी। पूर्वी बंगाल के ऐसे ही एक ठेठ गांव में, जहां सब बातें मंद गति से होती थीं, जगन्नाथ साहा रहते थे। बलियादी के बाजार में उनकी एक छोटी-सी किराने की दुकान थी।

जगन्नाथ का जब पांचवां पुत्र उत्पन्न हुआ, उसके पहले ही वे दो पुत्रों और दो पुत्रियों के पिता बन चुके थे। मेघनाद का जन्म एक तूफान भरी रात्रि में वर्षा के थपेड़ों और बिजली की कड़क के बीच हुआ। गरजता हुआ पवन उस कुटीर की फूस की छत को उड़ा ले गया जिसमें नवजात शिशु अपनी मां की बाहों में सिमटा हुआ पड़ा था। परंपरानुसार जिस कमरे में बच्चा पैदा हुआ था वह मुख्य

भवन से थोड़ा हटकर था। चूंकि प्रकृति के उन्माद के कम होने के लक्षण नहीं दिखाई देते थे अतएव दादी ने वृष्टि देवों के यथोचित सम्मान में बच्चे का नाम मेघनाद रखा जिसका अर्थ है बादलों की गड़गड़ाहट। सब मिलाकर यह पृष्ठभूमि ऐसे व्यक्ति के आगमन के लिए उचित ही थी जो राजा रावण के पुत्र की भांति अपनी अंतिम सांस तक अडिग योद्धा बना रहा।

मेघनाद स्वस्थ शिशु थे और गांव में सब बच्चों के समान छुटपन में ही तैरना और खेना सीख गए। अक्सर कहा जाता है कि देश के इस भाग के बच्चे ठीक से चल सकने के पूर्व ही तैरना सीख लेते हैं।

मेघनाद के सबसे बड़े भाई जयनाथ स्कूल में पढ़ने गए। परंतु मैट्रिकुलेशन की परीक्षा में उनके उत्तीर्ण न होने के कारण अन्य बच्चों को स्कूल भेजने के प्रति पिता का झुकाव कम हो गया। जयनाथ घर छोड़कर 20 रुपए मासिक वेतन पर एक पटसन कंपनी में काम करने चले गए। दूसरे भाई को पिता के कारोबार में सहायता करने के लिए पढ़ाई छोड़नी पड़ी। इसके अतिरिक्त उच्च शिक्षा ऐसी चीज थी जिसमें कुटुंब उस समय भाग लेने में असमर्थ था।

मेघनाद सात वर्ष की आयु में गांव की प्राथमिक पाठशाला में पढ़ने गए। अध्यापक शशि भूषण चक्रवर्ती तथा जतिन चक्रवर्ती को उसकी असाधारण स्मरण शक्ति और सीखने की अभिक्षमता से चकित होने में देर नहीं लगी। बालक जो भी एक बार सीख लेता उसे शायद ही कभी भूलता। स्वभावतः अध्यापक इस बात के लिए उत्सुक थे कि उनका छात्र अपनी पढ़ाई जारी रखे और छात्र भी इसके लिए सामान रूप से दृढ़ निश्चय और मनोयोग किए हुए था। सिवाय पुस्तकों के उसे अन्य कोई अभिरुचि नहीं थी। वह सवेरे प्रभात काल में ही उठकर पढ़ने बैठ जाता था। यदि उसकी मां जगाना भूल जातीं तो बालक अनावश्यक रूप से व्याकुल हो जाता। जब उसकी स्लेट, पैंसिल या पुस्तकों में कमी हो जाती या ये चीजें उसे शीघ्रता से नहीं दी जातीं तब भी उसकी यही दशा हो जाती। इन सब बातों से उसका नाम रोना बच्चा—या स्थानीय भाषा में 'कान्दुना' पड़ गया।

उनके घरवाले शिक्षा को कोई महत्व नहीं देते थे और उनके माता-पिता अपने पुत्र को इतना अध्ययन परायण देखकर प्रसन्न नहीं थे। यदि वह अपने पिता की दुकान में उनकी सहायता करता तो उन्हें अधिक अच्छा लगता। सप्ताह में तीन दिन उनके पिता अपना माल असबाब बेचने के लिए विभिन्न बाजारों की खोज में पंद्रह-बीस किलोमीटर बिना नागा पैदल चलते। युवा मेघनाद को सिर पर छाता लगाए और बगल में किताबों की पोटली दबाए दुकान में भोजन ले जाते हुए प्रायः देखा जाता। परंतु मेघनाद को किराने का सामान बेचने में रुचि नहीं थी। जब पुत्र के जोर जोर से पढ़ने से पिता की नींद में बाधा पहुंचती तब वे बहुधा उसे छड़ी से पीटते।

मेघनाद अति अल्प अवस्था से ही उन चीजों के लिए लड़ना सीख गए जिन्हें पाने का वे अपना हक समझते थे। शिक्षा के प्रति कुटुंब का विरोध पहली रुकावट थी जिसे उन्हें पार करना था। उनके कुटुंबियों का विश्वास था कि अंग्रेजी तथा अन्य आधुनिक विषयों का ज्ञान घर का कारोबार चलाने में सहायक सिद्ध नहीं होता अतएव उसका उपयोग ही क्या था। इसके अतिरिक्त कोई माध्यमिक विद्यालय निकट नहीं थे, कम से कम इतने निकट नहीं थे कि बालक पढ़ भी सके और कुटुंब की सहायता भी कर सके। सबसे निकटस्थ स्कूल दस किलोमीटर दूर सिमुलिया में था।

इस प्रकार तरुण अवस्था में पैर रखने के पूर्व ही मेघनाद के सामने दूसरी रुकावट खड़ी हो गई। दस किलोमीटर की दूरी एक समस्या बन गई पर अपने बड़े भाई जयनाथ के प्रयास से उन्होंने उसपर विजय पा ली। जयनाथ अपने छोटे भाई को उचित शिक्षा दिलाने के लिए बड़े उत्सुक थे। एक स्थानीय डॉक्टर अनंत कुमार दास के रूप में उन्हें एक प्रायोजक मिल गया। उन्होंने बालक को इस शर्त पर अपने घर में बिना खर्च के ठहरने की अनुमति दी कि मेघनाद अपने बर्तन स्वयं साफ करेगा। पर उन दिनों जातीय पक्षपात प्रबल था और सदय हृदय दास तथा उनकी पत्नी भी इससे अछूती न थीं। मेघनाद को छोटे-मोटे घरेलू कार्य एवं गाय की देखभाल करनी पड़ती थी। फिर भी जब तक अध्ययन जारी रखने का अवसर मिला उन्होंने इसकी चिंता नहीं की।

मेघनाद ने अपने समय का सदुपयोग किया। इस निर्माणात्मक काल में उन्हें उत्साहवर्धक अध्यापकों के मार्गदर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। प्रसन्न कुमार चक्रवर्ती ने प्रथम बार एक ऐसे विषय के प्रति अनुराग के बीच बोये जिससे उनके विद्यार्थी को शिखरस्थ स्थानों से प्रतिष्ठा मिली। चक्रवर्ती ने अनेक प्रकार से वही भूमिका निभाई जो एस.एन. बोस[10] के बाल्यावस्था के गणित अध्यापक उपेन्द्र बक्शी ने।

प्रत्येक सप्ताहांत मेघनाद पैदल घर वापस आते, यह ऐसी आदत थी जिसे उन्होंने आजीवन निभाया। जब गांव बाढ़ग्रस्त हो जाता तो वे सारा मार्ग नाव खेकर पार करते। माध्यमिक पाठशाला की पढ़ाई उन्होंने छात्रवृत्ति लेकर समाप्त की क्योंकि जिले के उत्तीर्ण विद्यार्थियों में उनका सर्वोच्च स्थान था। बारह वर्ष के बालक के रूप में वे महाविद्यालयी स्कूल में भर्ती होने के लिए ढाका आए। उनके जीवन में यह महत्वपूर्ण मोड़ सिद्ध हुआ। गांव के बालक को प्रथम बार अपने संसार से भिन्न एक दूसरे संसार की झलक मिली। शहर के लोगों और उसमें होने वाली घटनाओं के प्रवाह से यह उसकी प्रथम मुठभेड़ थी। कुछ लोगों से, जिनसे वे बाद में मिले, उनकी पीढ़ी का विशिष्ट वर्ग बना। उनमें से कुछ के नाम हैं : निखिल रंजन सेन और सुरेन्द्रनाथ राय जो उनके सहपाठी थे।

माध्यमिक स्कूल परीक्षा में फिर ढाका कमिश्नरी में प्रथम स्थान प्राप्त करने पर उन्हें 4 रुपए मासिक की छात्रवृत्ति प्रदान की गई। इसके अतिरिक्त वे नियमित रूप से अपने भाई जयनाथ से 5 रुपया प्रतिमाह भत्ता पाते रहे। 20 रुपए मासिक की अल्प आय के बावजूद जयनाथ अपने भाई की शिक्षा को पूर्ण कराना अपना कर्तव्य समझते थे क्योंकि उनके पिता सहायता करने की स्थिति में नहीं थे। पूर्व बंग वैश्य समिति उनको 2 रुपया प्रतिमाह अलग से देती थी। और इन 11 रुपयों की अल्प राशि में से साहा को अपने रहने और खाने का खर्च देना पड़ता था। (मेघनाद के समकालीन उसी स्कूल के एक विद्यार्थी ने अपने खर्च का ब्यौरा इस प्रकार दिया है। अध्यापन शुल्क 3 रुपए, निवास एवं भोजन 10 रुपए, चाय नमकीन 1 रुपया, विविध 1 रुपया और इस प्रकार कुल खर्च 15 रुपए।[11] परंतु यह लड़का अपेक्षाकृत संपन्न परिवार का था। मेघनाद पहले अरमानी टोला के एक टूटे-फूटे मकान में ठहरे थे। बाद में वे नलगोला के एक मकान में चले गए। ग्रीष्म और पूजा अवकाशों में वे अपने गांव के घर चले जाते, वहां वे पशुओं को नहलाने के लिए ले जाने में अपने पिता की सहायता करते। अपराह्न वे गांव के बाजार में जाकर किराने का सामान और सब्जी लाते। तत्पश्चात वे अपने छोटे भाइयों की पढ़ाई में सहायता करते। यद्यपि वे बहुधा गांव के लड़कों के साथ नौका दौड़ और तैराकी में भाग लेने जाते फिर भी वे मुख्य रूप से अध्ययनशील बालक बने रहे)

ढाका में मेघनाद का आगमन उस समय के गंभीर राजनैतिक विप्लव के साथ ही घटित हुआ। 1905 में ही लार्ड कर्जन ने बंगाल के विभाजन का निर्णय किया। इससे राष्ट्रीयता का अपार तूफान उठ खड़ा हुआ। इंग्लैंड में बने कपड़ों की होली जलाई जाने लगी। ब्रिटेन निर्मित आयातित कपड़ों का बहिष्कार और देश में बुने स्वदेशी के पुनः प्रयोग की लहर चल पड़ी। मेघनाद ने देखा कि इच्छा या अनिच्छा से वे उस हलचल में पड़ गए हैं। एक कथन के अनुसार जब गवर्नर सर बैम्पफिल्ड फुलर के आगमन पर स्कूल के वरिष्ठ छात्रों ने प्रदर्शन किया तब कई अन्य लड़कों के साथ मेघनाद को भी दंड दिया गया। एक अन्य कथन के अनुसार मेघनाद ने प्रदर्शन में भाग नहीं लिया, पर सदा की भांति वे नंगे पैर स्कूल गए थे। पर अधिकारियों ने इसे गवर्नर के प्रति जानबूझकर किया गया अपमान समझा। कारण जो भी रहा हो, मेघनाद अपने सहपाठी निखिल रंजन के साथ स्कूल से निष्कासित कर दिए गए। इससे भी बुरा यह हुआ कि वे छात्रवृत्ति और निःशुल्क विद्याध्ययन का अधिकार भी खो बैठे। परंतु एक निजी स्कूल, जिसका नाम किशोरी लाल जुबिली स्कूल था, उन्हें भर्ती करने और फिर से आर्थिक सहायता देने को तैयार था। तीस वर्ष बाद जब साहा विख्यात व्यक्ति बन गए तब महाविद्यालयी स्कूल ने उन्हें अपने यहां पधारने का आमंत्रण दिया। उनको अपने प्रख्यात पुराने विद्यार्थी पर गर्व था, यद्यपि यह वही स्कूल था जिसने उनके चरित्र को

असंतोषजनक होने का प्रमाण-पत्र दिया था।

स्कूल में उनका सबसे प्रिय विषय गणित था और उसके समीप ही द्वितीय स्थान पर इतिहास था। टाड लिखित 'राजस्थान' पढ़ने में उनकी अपूर्व रुचि थी। राजपूत एवं मराठा योद्धाओं की वीरता की कहानियों से उन्हें सदैव प्रेरणा मिलती। वीरता की कहानियों के प्रति उनके लगाव में जीवन भर कमी नहीं आई। टैगोर की 'कथा-व-कहिनी', जिसमें राजपूत एवं मराठा वीरों के शौर्य का यशोगान है, उनकी प्रिय पुस्तक थी। मधुसूदन दत्त का महाकाव्य 'मेघनाद वध' ऐसा ही एक और ग्रंथ था। योद्धाओं में लड़ने की भावना ही वह वस्तु थी जिसमें उनका आकर्षण कभी कम नहीं हुआ।

ज्ञान के प्रति अत्यधिक उत्कंठा और उसे आत्मसात करने की क्षमता उनके चरित्र की अनोखी विशेषता थी। उन्होंने ढाका के बैप्टिस्ट मिशन द्वारा संचालित कक्षाओं में जाना आरंभ कर दिया। वे जो भी काम करने का भार उठाते उसे भली भांति करते क्योंकि उनका कोई भी प्रयास अर्धमन से नहीं होता। अतएव आश्चर्य नहीं कि उन्हें बैप्टिस्ट मिशन की सर्वबंगाल परीक्षा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त हुआ यद्यपि इसमें कालेज के विद्यार्थी भी भाग ले सकते थे। ऐसा लगता था कि बहुत छोटी आयु से ही मेघनाद आगामी स्थिति के लिए अपने को तैयार कर रहे थे। यह कितना रोचक है कि वे हिंदू धर्म ग्रंथों के विवाद में पड़ गए, जो 1937 में उनके एक भाषण से उभरा था। यद्यपि बाद में वे नास्तिक के रूप में जाने जाते थे परंतु साहा सभी धार्मिक ग्रंथों में पारंगत थे, यद्यपि उनकी रुचि केवल विद्यापरक थी।

इंट्रेन्स परीक्षा (वर्तमान एस.एससी. की समकक्ष परीक्षा) में मेघनाद ने पूर्वी बंगाल के विद्यार्थियों में प्रथम स्थान प्राप्त किया। गणित एवं भाषाओं में उनको सबसे अधिक अंक मिले। 1909 में उन्होंने ढाका कालेज के इंटरमिडियेट विज्ञान (आई.एससी.) की कक्षा में प्रवेश लिया। वे प्रोफेसर नगेन्द्र नाथ सेन से जो ठीक उसी समय वियना से रसायन शास्त्र से डॉक्टर की उपाधि लेकर लौटे थे निजी रूप से जर्मन सीखने लगे। उन दिनों जर्मन भाषा का ज्ञान विज्ञान जगत में प्रवेश के लिए निश्चयात्मक पासपोर्ट था। वे आई.एससी. की परीक्षा में योग्यता के क्रम में तीसरे स्थान पर आए, पर गणित एवं रसायन शास्त्र में उनके अंकों का योग विश्वविद्यालय में सर्वोच्च था। प्रिंसिपल डब्लू.जे. आर्किबाल्ड के मन में तीव्रबुद्धि बालक के लिए कोमल भावना विकसित हो गई थी, इसलिए अपने विद्यार्थी के कलकत्ता प्रस्थान करने पर उन्हें काफी दुख हुआ। ढाका कालेज के जिन दो प्रोफेसरों ने उन्हें सर्वाधिक प्रभावित किया वे थे : पी.सी. सेनगुप्ता जिन्होंने उनका परिचय खगोल विज्ञान से कराया और गणितज्ञ के.पी. बसु।

अपनी नवीन एवं विविधतापूर्व परिस्थिति का लाभ उठाते हुए भी साहा ने

अपने प्रादेशिक विगत जीवन से कभी नाता नहीं तोड़ा। वे सिवरातली के बचपन की छाप जीवन पर्यंत ढोते रहे। बाढ़ के नियंत्रण के बारे में अपनी गंभीर चिंता में, अपने सभी कार्य-कलापों के प्रति चेतना-हीनता में वे सीधे-सादे देहाती बालक—एक वणिक के पुत्र—बने रहे। उन्होंने सुरुचिपूर्ण वस्त्र धारण करने का झंझट कभी नहीं उठाया। उनके इसी लक्षण के कारण ज्ञानघोष जैसे उनके मित्र उन्हें 'बिन तराशा' हीरा कहते थे।

कुछ हीरों को अतिरिक्त पालिश की आवश्यकता नहीं होती। साहा उन्हीं हीरों में से एक थे। साहा को शैक्षणिक और भौतिक दोनों ही अर्थों में सफलता उनके जीवनवृत्त के प्रारंभिक दिनों में ही उपलब्ध हो गई, परंतु उन्हें अपने बचपन की यादें अर्थात उस नंगे पैर बालक की जो मिट्टी-कीचड़ में कई किलोमीटर पैदल चलकर स्कूल पहुंचता था, कभी भूली नहीं। फिर इसमें क्या संदेह कि वे अपने ही बच्चों को जूतों के बारे में शोर मचाते देखकर आश्चर्यचकित हो जाते। "क्यों ? तुम्हारी आयु में मैं बिना जूतों के भी काम चला लेता था" कहकर प्रतिवाद करते ! सरल जीवन-शैली उनके बड़े काम आई, परंतु उनके बचपन के सभी अनुभव सुखदायक नहीं थे। एक ऐसा अवसर उस समय आया जब एक पुजारी ने उनसे उस मंच से नीचे उतर जाने को कहा जहां सरस्वती पूजा हो रही थी। उनका एकमात्र दोष यह था कि वह उचित जाति के नहीं थे, यद्यपि ज्ञान की देवी ने उन पर यथेष्ट आशीर्वाद की वर्षा की थी। एक स्वाभिमानी बालक पर इस प्रकार की घटना का क्या प्रभाव पड़ा होगा इसकी कल्पना की जा सकती है। उस दिन के बाद से ही पूजा के आगामी सभी अनुष्ठानों में मेघनाद ने भाग लेना छोड़ दिया। बाद में इस अनुभव की पुनरावृत्ति हुई और इसका घाव फिर कभी नहीं भरा।

हमारे महान पुरुषों में से अनेक गांव से आए हैं। इनमें पी.सी. रे और जे.सी. बोस भी हैं। परंतु जिस प्रकार बचपन के अनुभव साहा के संपूर्ण व्यक्तित्व में समाहित हो गए हैं वैसा किसी और में देखने में नहीं आया।

उनकी परिस्थिति के अतिरिक्त उनके बड़ों का भी उनके व्यक्तित्व को बनाने में हाथ था। और मेघनाद को बच्चों के रूप में कृतज्ञ होने के यथेष्ठ कारणों से इसे स्वीकार करना पड़ा। सबसे पहले और सबसे बढ़कर वे अपने बड़े भाई जयनाथ के आभारी थे जो उन्हें पढ़ाने के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार थे, फिर उस डॉक्टर के प्रति जिसने सिमुलिया में उन्हें ठहरने का स्थान दिया। इस कुटुंब के साथ साहा का घनिष्ठ संबंध था। उन्होंने बचपन के सभी संबंधों को अक्षुण्ण रखा। उनका इलाहाबाद का और बाद में कलकत्ता का घर उनके विद्यार्थियों और संबंधियों के लिए खुला रहता था। वे अपनी पत्नी को बराबर याद दिलाते रहते, "इन विद्यार्थियों को यहां आकर उसी प्रकार ठहरने दो जैसे मैं ठहरा करता था जब मैं विद्यार्थी था और मुझे ठहरने की जगह की आवश्यकता थी।"

उनकी माता सदैव उन्हें पढ़ाई में उत्साहित करती रहती; यहां तक कि उन्होंने अपने एक सोने के कड़े को उनकी परीक्षा-फीस जमा करने के लिए गिरवी रख दिया। उनके प्रति कृतज्ञता जताने के लिए साहा ने सिवरातली में एक लड़कियों का स्कूल स्थापित किया और इसका नाम अपनी माता भुवनेश्वरी के नाम पर रखा। बहुत दिन तक इस स्कूल को साहा कुल के लोग चलाते रहे, परंतु बाद में इसे पहले की पूर्वी पाकिस्तान सरकार ने ले लिया।

2

बाह्य जगत

(1911-1920)

1911 में मेघनाद ने विज्ञान में स्नातक बनने के लिए प्रेसिडेंसी कालेज, कलकत्ता में प्रवेश लिया। सर पी.सी. रे ने अपने आत्मचरित[12] में एक विशिष्ट विद्यार्थी वर्ग का उल्लेख किया है, जिसमें मेघनाद साहा, सत्येन्द्र नाथ बोस, निखिल रंजन सेन, ज्ञानचन्द्र घोष, ज्ञानेन्द्र नाथ मुखर्जी, शैलेन्द्रनाथ घोष, अमरेश चन्द्र चक्रवर्ती और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी हैं। सुरेन्द्रनाथ बाद में रामकृष्ण मिशन में चले गए। प्रशांत चन्द्र महलनवीस तथा नील रतन धर इनसे वरिष्ठ थे। सुभाषचन्द्र कनिष्ठ छात्र थे, पर साहा उनसे बहुत स्नेह करने लगे। (यदि विद्यार्थी तीव्रबुद्धि थे तो अध्यापक भी कम विशिष्ट नहीं थे। कोई छोटा आदमी नहीं बल्कि जे.सी. बोस उन्हें भौतिकी पढ़ाते थे। पी.सी. रे ने रसायन शास्त्र सम्हाल रखा था और डी.एन. मलिक उन्हें गणित पढ़ाते थे। यद्यपि जे.सी. बोस अपने को अलग रखते थे, पर रे अपने छात्रों के प्रति अत्यधिक अनुरक्त थे और उनसे मित्रतापूर्ण व्यवहार करते थे। संध्या को भ्रमण के लिए जाते समय, वे अपने कुछ प्रिय छात्रों को साथ के लिए ले जाते थे और इन छात्रों में साहा भी थे।)

वास्तव में मेघनाद एक नहीं अनेक कारणों से पी.सी. रे की ओर आकर्षित हुए। मेघनाद की ही भांति, रे को भी अपने गांव से गहरा लगाव था। 1913 में दामोदार नदी में भीषण बाढ़ आई तब रे अपने छात्रों को राहत कार्य के लिए ले गए। यहीं पर साहा को प्रत्यक्ष अनुभव हुआ कि बाढ़ग्रस्त नदी कितना विध्वंस एवं दुख ढा सकती है। वे जलाप्लावित नदियों के क्षेत्र से आए थे, अतएव उनको बाढ़ के बारे में कुछ जानकारी थी, पर दामोदर की बाढ़ ने उनकी आंखें खोल दीं। उन्होंने सोचा कि यदि इस अनिष्कासित ऊर्जा को यथोचित रीति से नियंत्रित किया जा सके तो संभवतः यह बहुत उपयोग में लाई जा सकती है। साहा को सभी सार्वजनिक कार्यो में प्रेरित करने वाली सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना सीधे पी. सी. रे से विरासत में मिली थी, जिनका विचार था कि "विज्ञान प्रतीक्षा कर सकता

है पर स्वराज्य नहीं।"

इस बीच उनकी शिक्षा में प्रगति होती गई। उन्होंने गणित में बी.एससी. (आनर्स) और सम्मिश्र गणित में एस.एससी. पूरी कर ली और दोनों ही परीक्षाओं में द्वितीय स्थान लेकर प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। एस. एन. बोस उनके बलिष्ठ प्रतिस्पर्धी थे जो दोनों ही परीक्षाओं में प्रथम आए। बोस और साहा का संबंध मैत्री एवं प्रतिस्पर्धा का विचित्र मिश्रण था और यह उनके वृत्तिक भर ऐसा ही रहा।

कलकत्ता में मेघनाद को बहुत कम रुपयों में गुजारा करना पड़ता था। वह ईडन हिंदू छात्रावास में साहार रहते थे पर परिस्थितिवश शीघ्र ही उसे छोड़ना पड़ा। मेघनाद ने निश्चय किया था कि वे "उच्च वर्ग" के लड़कों द्वारा किए गए तिरस्कार की अनदेखी करेंगे। ये लड़के उन्हें अपने साथ भोजन तक नहीं करने देते थे। उनको पहले भी इसी प्रकार दुर्भाग्यपूर्ण अनुभव हो चुका था। परंतु हिंदू रूढ़िवादिता के प्रति बढ़ती हुई घृणा के अतिरिक्त उन्होंने कभी अपना रोष प्रकट नहीं किया। जब हिंदू छात्रावास के कुछ लड़कों ने उन्हें सरस्वती पूजा के परिसर में प्रवेश नहीं करने दिया तो उनसे अधिक निराशा उनके मित्रों को हुई। फलतः इसके विरोध में उनके एक समूह ने ज्ञानघोष के नेतृत्व में छात्रावास छोड़ दिया। उन्होंने 110 कालेज स्ट्रीट में एक निजी 'मेस' स्थापित किया। नील रतन धर और भूपेन घोष उनमें आ मिले। घोष अपने भाई को भी वहां ठहरने के लिए ले आए और ऐसा ही साहा ने भी किया। छात्रवृत्ति के अतिरिक्त साहा कुछ लड़कों को निजी रूप से पढ़ाते थे जिसकी आय से उनका और उनके छोटे भाई कनाई का काम चल जाता था। मेघनाद में सभी प्रकार की कठिनाइयों को झेलने की क्षमता थी। उनका एक दैनिक कार्यक्रम था अपने विद्यार्थियों के अनुशिक्षण के लिए शहर के एक किनारे से दूसरे किनारे तक साइकिल चलाना। (इसी काल में वे पुलिन दास एवं बाघा जतिन दास जैसे क्रांतिकारियों के संपर्क में आए। पुलिन दास के साथ उनकी जान पहचान पिछले ढाका के कालेज-दिनों से थी। अब मेघनाद पुलिन दास द्वारा प्रवर्तित अनुशीलन समिति के सदस्य बन गए थे। समिति के सभी सदस्यों को ड्रिल और तलवार चलाने की शिक्षा दी जाती थी। जतिन मुकर्जी का नाम तब तक बाघा जतिन दास पड़ गया था क्योंकि उन्होंने एक बाघ को कृपाण से मार डाला था। बाद में वे बालासौर में पुलिस के साथ गोरिल्ला युद्ध करते हुए शहीद हुए। बाघा जतिन जब कभी कलकत्ता आते तब बहुधा कालेज स्ट्रीट के मेस में निवास करते।)

मेघनाद की अन्य जिम्मेदारियां भी थीं। अतएव सब सहानुभूतियों के बावजूद वे क्रांतिकारियों को यथेष्ट सक्रिय सहायता नहीं दे पाते क्योंकि उन्हें आमदनी खर्च के संतुलन पर भी ध्यान रखना पड़ता था। उन्होंने गौरवशाली फाइनेंस परीक्षा में बैठने के लिए आवेदन पत्र दिया। परंतु उनके क्रांतिकारी संबंधों के कारण उनका आवेदन पत्र अस्वीकार कर दिया गया। यदि यह घटना न होती तो वे इंडियन

फाइनेंस सर्विस में चले गए होते और सरकारी अधिकारी के रूप में सेवारंत होते। पर सरकार का लाभ संभवतः विश्व की हानि बन जाता। पर कौन जाने, सी.वी. रामन की भांति लाभदायक सरकारी पद को छोड़कर वे भी अपनी वास्तविक वृत्तिक में पुनः आ जाते।

एम.एससी. की परीक्षा पूरी करने के बाद सत्येन्द्र नाथ बोस और मेघनाद साहा दोनों प्रोफेसर गणेश प्रसाद के अंतर्गत कलकत्ता विश्वविद्यालय के अनुप्रयुक्त गणित विभाग में प्राध्यापक का कार्य करने लगे। परंतु प्रोफेसर प्रसाद के साथ दोनों ही निभा नहीं सके और सर आशुतोष मुकर्जी के बीच-बचाव से बोस तथा साहा दोनों भौतिकी विभाग में स्थानांतरित कर दिए गए। इस बात से दो कार्य सिद्ध हुए। दोनों युवक प्रसन्न हो गए और उनकी प्रतिभा का विश्वविद्यालय के लाभ के लिए उपयोग होने लगा। गणित के दोनों उदीयमान छात्रों, बोस और साहा को नियुक्त कर सर आशुतोष उपलब्ध प्रतिभा का श्रेष्ठतम उपयोग कर रहे थे। यह कितने आश्चर्य की बात है कि बोस तथा साहा दोनों के ही भाग्य में भौतिकी में योगदान करना लिखा था, जिस विषय का अध्ययन उन्होंने प्रधानतः स्वतः किया था।

इसके अतिरिक्त उनके सामने और भी चुनौतियां थीं, जिन्हें पूर्ण रूप से समझने के लिए उनको यथोचित पृष्ठभूमि में देखना पड़ेगा। इस शताब्दी के मोड़ पर विज्ञान में अनुसंधान का वातावरण इस देश में था ही नहीं। स्मरणार्थ, 1876 में डा. महेन्द्रलाल सरकार ने विज्ञान-संवर्धन के भारतीय संघ (आई.ए.सी.एस.) की स्थापना की थी जिसका उद्देश्य विज्ञान में आधारभूत अनुसंधान के लिए भारतीयों को उत्साहित करना था। परंतु इसका कार्य न्यूनाधिक भाषण दिलाने तक ही सीमित था। बाद में, संघ के कतिपय सदस्यों द्वारा गणित में अनुसंधान किया गया। पर सच्चे अर्थों में मूलभूत वैज्ञानिक अनुसंधान आई.ए.सी.एस. में तभी आरंभ हुआ जब इसमें रामन ने अल्पकालिक कार्यकर्ता के रूप में प्रवेश किया। उनका प्रथम अनुसंधान लेख 1907 में प्रकाशित हुआ। केवल एक ही स्थान पर मूलभूत अनुसंधान कार्य होता था, वह प्रेसिडेंसी कालेज की प्रयोगशाला थी जिसमें दोनों अग्रणी पी.सी. रे तथा जे.सी. बोस ने विद्युत तरंगों पर अपना दृष्टांत योग्य कार्य प्रकाशित किया था। वास्तव में सर्वप्रथम बनने वाले सूक्ष्मतरंग जनित्रों का यही आधार बना। यह मार्कोनी द्वारा रेडियो तरंगों के प्रसारण के अनुसंधान के लगभग साथ साथ घटित हुआ। पी.सी. रे रसायन शास्त्र में अनुसंधान करने में संलग्न थे और अंतर्राष्ट्रीय अखाड़े में पहले ही अपना स्थान बना चुके थे। जे.सी. बोस एवं पी. सी. रे दोनों ने ही यूरोप में विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय सभाओं में अपने वैज्ञानिक लेखों को प्रस्तुत किया था और इस प्रकार न केवल स्वयं प्रसिद्धि प्राप्त की थी अपितु अपने देश को भी गौरवान्वित किया था। प्रेसिडेंसी कालेज में पी.सी. रे ने पहले

ही युवा व्यक्तियों का एक दल एकत्र कर लिया था जो बाद के वर्षो में सारे भारत में रसायन में अनुसंधान की परंपरा कायम रख सके। इसके विपरीत जे.सी. बोस की कोई शिष्य श्रेणी नहीं थी।

इस शताब्दी के प्रथम दशक की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना थी 1906 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति पद पर सर आशुतोष मुकर्जी की नियुक्ति। तब तक कलकत्ता विश्वविद्यालय मात्र परीक्षा लेने का संस्थान था। कलकत्ता विश्वविद्यालय की एम.ए. परीक्षा में बैठने हेतु तैयार करने के लिए प्रेसिडेंसी कालेज, स्काटिश चर्च कालेज आदि जैसे कुछ कालेजों को स्नातकोत्तर कक्षाएं चलाने का अधिकार था। सर आशुतोष मुकर्जी दो पदावधि के लिए 1914 पर्यंत कुलपति थे। अपने कार्यकाल के दौरान उन्हें स्पष्ट रूप से मालूम हुआ कि विश्वविद्यालय में मानविकी एवं विज्ञान दोनों में स्नातकोत्तर शिक्षण विभागों की आवश्यकता थी। अपने स्वाभाविक ओज तथा उत्साह से वे सरकार के प्रबल प्रतिरोध जैसी बहुत-सी बाधाओं के होने पर भी अपना उद्देश्य प्राप्त करने में सफल रहे। उनका स्वप्न साकार हो सका, इसका एक मात्र कारण था उनका सौभाग्य कि वे सर तारक नाथ पालित और सर रासबिहारी घोष का संरक्षण प्राप्त कर सके। सर तारक नाथ ने दो प्रोफेसरों के पदों के लिए विश्वविद्यालय को 13.66 लाख का प्रारंभिक दान दिया। इनमें एक पद भौतिकी के लिए था और दूसरा रसायन शास्त्र के लिए। सर तारक नाथ पालित ने विश्वविद्यालय को एक भूखंड 92 अपर सरकुलर रोड पर (जो अब आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र रोड कहलाता है) दान में दिया (जिसमें रसायन विभाग है) और एक 35 बैलीगंज सरकुलर रोड पर (जिसमें अब जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, नृविज्ञान एवं सांख्यिकी विभाग हैं)। सर पी.सी. रे से निवेदन किया गया कि वे प्रथम पालित प्रोफेसर बनें। परंतु वे पहले से ही प्रेसिडेंसी कालेज में काम कर रहे थे अतएव वे शीघ्र नहीं आ सकते थे। फलतः उन्होंने समयपूर्व अवकाश ग्रहण कर लिया और 1916 में अपने नए पद का कार्यभार सम्हाल लिया। भौतिकी के पालित प्रोफेसर के पद को रामन को देने का प्रस्ताव किया गया जो उस समय इंडियन फाइनेंस विभाग में एक उच्च पदाधिकारी थे। रामन उस समय संगीत ध्वनिकी पर अनुसंधान कर रहे थे और उस पर उनके कई लेख प्रकाशित हो चुके थे। फाइनेंस विभाग से कार्य मुक्त होने में उन्हें कुछ समय लगा पर अंततोगत्वा उन्होंने 1917 में पालित प्रोफेसर का पद स्वीकार कर लिया।

1914 में सर रासबिहारी घोष ने विश्वविद्यालय को 10.46 लाख रुपयों का नकद दान दिया। इस धन से चार प्रोफेसर के पदों की स्थापना की गई। इनमें से अनुप्रयुक्त गणित, भौतिकी, रसायन और वनस्पति विज्ञान में एक एक पद बने। इन चारों घोष प्रोफेसर के पदों पर कार्य करने वाले थे : गणेश प्रसाद, डी.एम. बोस, पी.सी. मित्तर और एस.पी. अगारकर। इन सभी ने आगामी काल में अपने

अपने विशिष्ट क्षेत्र में प्रतिष्ठा अर्जित की। 1919 तथा 1921 में सर रासबिहारी ने 14 लाख रुपयों का एक और दान दिया। इससे एक प्रौद्योगिकी संकाय की स्थापना की गई जिसमें अनुप्रयुक्त भौतिकी तथा अनुप्रयुक्त रसायन के विभाग खुले। प्रोफेसर पद के लिए एक महत्वपूर्ण धारा यह रखी गई कि इसके लिए केवल भारतीय ही आवेदन देने के अधिकारी थे। अंग्रेज शासकों को इससे इतनी चिढ़ हुई कि उन्होंने अनेक वर्ष तक विश्वविद्यालय को अपना संरक्षण प्रदान नहीं किया।

भारत सरकार से प्राप्त कुछ अनुदानों के अतिरिक्त धर्मादा से मिले धन से सर आशुतोष मुकर्जी 27 मार्च 1914 को 'यूनिवर्सिटी आफ साइंस' की आधार शिला रखने में सफल हुए। विश्वविद्यालय के कुलपति पद से कार्यमुक्त होने के ठीक चार दिन पहले उन्होंने यह कार्य संपन्न किया।

यूनिवर्सिटी कालेज आफ साइंस 1916 से काम करने लगा। इसके संबंध में सर पी.सी. रे ने अपने आत्मचरित[12] में लिखा है–

"1916 के पूजा अवकाश के बाद मैं साइंस कालेज में काम करने लगा। उस समय आशुतोष मुकर्जी को इस बात का पूर्वाभास था कि प्रतिभाशाली युवक ज्ञानघोष, ज्ञान मुकर्जी, मेघनाद साहा और सत्येन बोस को यदि उचित अवसर दिया जाए तो वे विज्ञान की साधना में बहुत आगे बढ़ेंगे। उन सभी को प्राध्यापक का पद देने का प्रस्ताव किया गया। परंतु इस प्रारंभिक अवस्था में एक बड़ी कठिनाई आ पड़ी। पालित एवं घोष के न्यासी (ट्रस्ट) दस्तावेजों की शर्तो के अनुसार केवल ब्याज का ही उपयोग किया जा सकता था, मूलधन का कोई अंश नहीं। शर्तो में स्पष्ट लिखा था कि विश्वविद्यालय अपने ही कोष से भवनों के अनुरक्षण, वैज्ञानिक उपस्करों के क्रय और उनके रख-रखाव का प्रावधान करेगा। परंतु विश्वविद्यालय के अनुसंधान कोष में कमी आ गई। विभाग में मैंने अकार्बनिक रसायन का कार्यभार लिया था और मेरे सहयोगी प्रोफेसर प्रफुल्ल चन्द्र मित्तर ने कार्बनिक रसायन का। हम लोगों ने उन्हीं उपस्करों का उपयोग किया जो पहले से विद्यमान थे। परंतु भौतिक रसायन एवं भौतिकी विभागों में कोई भी उपस्कर उपलब्ध नहीं थे। प्रथम युद्ध चल रहा था और यूरोप से किसी उपस्कर को आयात नहीं किया जा सकता था। आशुतोष मुकर्जी बड़ी कठिनाई में थे। परीक्षार्थियों की 'फीस' से की गई बचत से एक विशेष निधि बनाई गई। यह धन साइंस कालेज के भवन निर्माण के प्रावधान पर व्यय हो गया। अतएव आशुतोष को बिना गारा के केवल ईटों द्वारा संरचना खड़ी करनी पड़ी। उन्हें ज्ञात हुआ कि कासिम बाजार के महाराजा सर मनीन्द्र चन्द्र नन्दी ने अनेक बहुमूल्य उपस्करों को क्रय किया था क्योंकि वे बरहमपुर में अपने द्वारा स्थापित कालेज में भौतिकी (आनर्स) का पाठ्यक्रम चलाना चाहते थे। परंतु यह कार्यक्रम संपन्न नहीं किया जा सका। आशुतोष की प्रार्थना पर महाराजा ने सभी उपस्कर साइंस कालेज को दान कर दिए। शिवपुर इंजीनियरी

कालेज के प्रोफेसर बुहल ने कुछ उपस्कर उधार दिए। मैं स्वयं सैंट जेवियर कालेज में गया और वहां से 'कनटक्टीविटी ब्रिज' ले आया।

सर पी.सी. रे के अंतर्गत पहले से ही प्रशिक्षित युवा वर्ग की प्रवीण सहायता एवं पहले से ही प्राप्त किए गए उपस्करों से रसायन विभाग बिना कठिनाई के चल निकला। कोई भी तात्कालिक समस्या नहीं थी। अकार्बनिक तथा कार्बनिक रसायन में अध्यापन तथा अनुसंधान साथ साथ अग्रसर होने लगा। परंतु भौतिक रसायन अनुभाग बिगड़ गया क्योंकि इसमें आवश्यक उपस्कर नहीं थे।

साइंस कालेज भवन के उत्तरी खंड में तीन मंजिलें भौतिकी विभाग को दी गई थीं। उसमें बृहदाकार कक्ष थे और आज भी ऐसा लगता है कि वे रसायन प्रयोगशाला की भांति उपयोग के लिए बनाए गए थे। रसायन विभाग की तुलना में भौतिकी विभाग का प्रारंभ अपंग जैसा रहा। पालित प्रोफेसर सी.वी. रामन ने कार्यभार नहीं संभाला था और डा. डी. एम. बोस प्रथम महायुद्ध में जर्मनी में नजरबंद थे। इस तरह भौतिकी विभाग का संगठन एस.के. मित्रा, पी.एन. घोष तथा एस.के. आचार्य जैसे कुछ युवा प्राध्यापकों पर छोड़ दिया गया था। एस.एन. बोस तथा एम.एन. साहा अनुप्रयुक्त गणित में प्राध्यापक नियुक्त हुए थे परंतु बाद में दोनों को ही भौतिकी विभाग में स्थानांतरित कर दिया गया। भौतिकी विभाग के युवा प्राध्यापकों ने संघटक कालेजों से उपस्कर एकत्र किए और स्वयं पाठ्यक्रम बनाकर अध्यापन कार्य प्रारंभ कर दिया। उन्होंने इतना अच्छा काम किया कि जब सी.वी. रामन अंत में वहां आए तो उन्हें कोई समस्या नहीं मिली क्योंकि विभाग पहले से ही सुचारु रूप से चल रहा था। प्रोफेसर रामन ने विश्वविद्यालय के साइंस कालेज के परिसर में बहुत कम अनुसंधान किया। 1932 तक उनका प्रमुख अनुसंधान कार्य इंडियन एसोसियेशन फार साइंस के प्रांगण के अंतर्गत सीमित रहा। वह साइंस कालेज में केवल अपने विद्यार्थियों को भाषण देने जाते थे। उनके कुछ व्याख्यान इंडियन एसोसिएशन में भी होते थे। युवा प्राध्यापकों को भौतिकी के अध्यापन में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता था, विशेष कर इसलिए कि सत्येन बोस तथा मेघनाद साहा स्नातकोत्तर स्तर पर मूलतः गणित के विद्यार्थी थे। परंतु उन्होंने नई चुनौती का साहसपूर्वक सामना किया। स्नातकोत्तर कक्षाओं में साहा के पहले के व्याख्यानों में द्रवस्थैतिकी, पृथ्वी की आकृति, स्पेक्ट्रम विज्ञान, ऊष्मागतिकी आदि विविध विषयों का समावेश होता था। ऊष्मा पर प्रयोग करने की प्रयोगशाला एकमात्र उन्हीं के अधिकार में थी। इस अवधि में उन्होंने प्लांट के थर्मोडाइनेमिक्स और नेर्न्स्ट के 'डास न्यु वार्मोसाब्स' का अध्ययन किया। उन्होंने परमाणु के 'क्वांटम सिद्धांत पर बोर तथा समरफिल्ड द्वारा प्रस्तुत लेखों की जानकारी प्राप्त की। चूंकि साहा जर्मन भाषा अपने इंटरमिडियेट के दिनों से जानते थे अतएव जर्मन भाषा पढ़ने में उनके लिए कोई समस्या नहीं उत्पन्न हुई। उनके

साथ साथ उन्हीं दिनों साहा ने अपने मित्र एवं सहयोगी बोस के साथ आइन्सटाइन की 'थिअरी आफ रिलेटीविटी' का अनुवाद किया और 1919 में कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा उसका प्रकाशन कराया। यह 'थिअरी आफ रिलेटिविटी' का प्रथम अंग्रेजी अनुवाद था।

इस बात पर आश्चर्य किया जा सकता है कि साहा तथा बोस ने सी.वी. रामन के तत्वावधान में क्यों नहीं अनुसंधान कार्य आरंभ किया। उनके अन्य सहयोगी एस.के. मित्रा तथा पी.एन. घोष ने 'स्पेक्ट्रमिकी' में सी.वी. रामन के तत्वावधान में अनुसंधान कार्य आरंभ किया। एक व्यक्तिगत पत्र से यह ज्ञात हुआ है कि प्रारंभिक दिनों में रामन ने अपने दूतों के द्वारा साहा को अपने तत्वावधान में कार्य करने के लिए कहलवाया। साहा को संभवतः यह विचार अच्छा नहीं लगा। यह ध्यान देने की बात है कि साहा जे.सी. बोस के पास भी नहीं गए जिन्हें वे व्यक्तिगत रूप से पसंद तथा आदर करते थे। इस बीच जे.सी. बोस ने विद्युत तरंगों के अध्ययन से मन हटाकर जैविक एवं अजैविक और अंततः वनस्पति जगत के भौतिक अध्ययन में अपना मन लगाया। उन्होंने अध्ययन कर अपने अनेक लेख प्रकाशित किए और वैज्ञानिक जगत में अपने लिए एक स्थान बना लिया। 1912 में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने उन्हें सम्मानार्थ विज्ञान वारिधि (डाक्टर आफ साइंस) की उपाधि से विभूषित किया। नौ वर्ष बाद यही सम्मान सी.वी. रामन को प्रदान किया गया। जे.सी. बोस को तत्पश्चात 1914 में नाइट पद देकर सम्मानित किया गया। 1916 में प्रेसिडेंसी कालेज से सेवानिवृत्ति के बाद जे.सी. बोस प्रतिष्ठित आचार्य नियुक्त किए गए और उन्हें अपना अनुसंधान कार्य करते रहने की अनुमति दी गई। धीरे धीरे उन्होंने अपनी प्रयोगशाला को अपने ही घर में स्थानांतरित कर दिया, जो साइंस कालेज के बगल में ही था। 1917 में वे स्वयं अपने लिए एक अनुसंधान केंद्र स्थापित करने में सफल हुए। यह अनुसंधान केंद्र जो बोस संस्थान कहलाता है अब एक राष्ट्रीय महत्व का संस्थान है। एक वर्ष बाद 1918 में सर जे.सी. बोस रायल सोसाइटी लंदन के फेलो चुन लिए गए।

मेघनाद साहा तथा सत्येन बोस दोनों ही अपनी अपनी रुचि के क्षेत्र में अनुसंधान कार्य करते रहे।

मेघनाद ने अपना अनुसंधान कार्य स्वयं अपने निजी अध्ययन से प्राप्त ज्ञान के आधार पर आरंभ किया। भौतिकी विभाग में व्यावहारिक प्रयोगशाला नहीं थी। इससे बचाव का एकमात्र साधन था प्रेसिडेंसी कालेज का समृद्ध और सुसज्जित पुस्तकालय। प्रारंभ में साहा ने विधि विषयों को अपने हाथ में लिया। उनका प्रथम अनुसंधान लेख—''मैक्सवेल के प्रतिबलों पर''—विकिरण के विद्युत चुंबकीय सिद्धांत का विवेचन—फिलोसॉफिकल मैगजीन में वष 1917 में प्रकाशित हुआ था। इस लेख में प्रेसिडेंसी कालेज में अपने अध्यापक प्रोफेसर डी.एन. मलिक से प्राप्त

सहायता एवं प्रोत्साहन के प्रति उन्होंने आभार प्रकट किया था। तत्पश्चात क्रमशः जल्दी अनुसंधान लेख निकले। यथा फेबीपेरो इंटरपेरोमीटर में ''व्युतक्रमण की सीमा पर'' (फिजिकल रिव्यू, 1917), ''प्रत्यास्थता के नए प्रमेय पर'' (एशियाटिक सोसाइटी जरनल, बंगाल, 1918); ''प्रकाश के दाब पर'' (एशियाटिक सोसाइटी जरनल, बंगाल, 1918); ''इलेक्ट्रान की गतिकी पर'' (फिला. मैग. 1918) ''एक नए अवस्था-समीकरण पर'' सत्येन बोस के सहलेखन में (फिला. मैग. 1918); ''इलेक्ट्रान की यांत्रिक एवं विद्युतगतिक गुणधर्म पर'' (फिजिकल रिव्यू, 1919); ''विकिरण दाब एवं क्वांटम सिद्धांत पर'' (एस्ट्रोफिजिकल जरनल 1919); ''विद्युत क्रिया के मौलिक नियम पर'' (फिला. मैग. 1919)।

कुछ ही वर्षों के बीच प्रकाशित ये लेख, सिवाय ''प्रकाश के दाब पर'' गंभीर सैद्धांतिक अध्ययन के फलस्वरूप लिखे गए थे। अंतिम लेख में भौतिकी प्रयोगशाला में संविरचित स्वदेशी उपस्कर से प्रकाश-दाब के वास्तविक मापनों के परिणामों का उल्लेख था। जो परिणाम मिला वह सैद्धांतिक गणना द्वारा प्रागुक्त मान के अति निकट था। अविश्वसनीय जान पड़ने पर भी यह सराहनीय है कि साहा और उनके सहकारी वर्ग को वास्तव में बिना किसी साधन के ऐसा उपस्कर लगाने में उन दिनों सफलता मिली। परंतु, साहा के लिए कुछ भी असाध्य नहीं था। यह उल्लेखनीय है कि केवल इसी लेख में साहा ने अपने कार्य में प्रोफेसर सी.वी. रामन को रुचि लेने के लिए धन्यवाद दिया है। अन्य सभी में साहा ने अपने विद्यार्थियों और मित्रों, विशेषकर एस.एन. बोस के प्रति आभार प्रकट किया है।

पूर्व पैराग्राफ में उल्लिखित कार्य के आधार पर साहा ने अपना शोध-प्रबंध 1918 में प्रस्तुत किया और उन्हें 'डाक्टर आफ साइंस' की उपाधि कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा 1919 में दी गई। यह कितना रोचक है कि मेघनाद के मित्र और आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र के आभिजात्य विद्यार्थी ज्ञानेन्द्र चन्द्र घोष ने भी उसी वर्ष डॉक्टर की उपाधि पाई। साहा की भांति जे.सी. घोष को भी भौतिक रसायन में बिना उपस्कर के कार्य करने में उनके समान ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

प्रसंगवश कलकत्ता विश्वविद्यालय से विज्ञान में डाक्टर की उपाधि प्राप्त करने वाले प्रथम व्यक्ति रसायन में रसिक लाल दत्त थे (1916)। द्वितीय व्यक्ति अनुप्रयुक्त गणित में डा. सुधांशु कुमार बैनर्जी थे जो भारतीय मौसम विज्ञान विभाग में मुख्य अधिशासी बनने के पूर्व अनुप्रयुक्त गणित के घोष प्रोफेसर (1919-22) थे। शिशिर कुमार मित्रा को डाक्टर की उपाधि 1920 में मिली।

सामान्य किंवदंती है कि जब सर आशुतोष ने मेघनाद का शोध प्रबंध देखा तब उसके समीक्षात्मक मूल्यांकन के लिए उसे तुरंत विदेशों में भेजने की सलाह दी जिससे विश्वविद्यालय की अच्छी धारणा बनाने में सहायता मिले। साहा के शोध प्रबंध का निरीक्षण प्रोफेसर ओ.डब्लू. रिचार्डसन, डा. पोर्टर एवं डा. एन. आर.

कैम्पबेल ने किया।

साहा का यह बड़ा ही उत्पादकता भरा काल था। उनके "तारकीय स्पेक्ट्रम के हारवर्ड वर्गीकरण पर" शोध निबंध के आधार पर 1919 में प्रेमचन्द रायचन्द अधिछात्रवृत्ति प्रदान की गई। 1920 में "तारकीय स्पेक्ट्रमों में रेखाओं के उद्‌भव पर" उनके शोध-प्रबंध को कलकत्ता विश्वविद्यालय ने ग्रिफिथ पारितोषिक दिया। डा. डी.एम. बोस[13] लिखते हैं–

1920 में ग्रिफिथ मेमोरियल पुरस्कार निबंध के एक परीक्षक के रूप में, जिसमें प्रतिस्पर्धियों को छद्‌मनाम देना पड़ता था, अन्य लेखों के अंतर्गत मुझे एक लेख किसी हेलियोफाइलस द्वारा लिखित "तारकीय स्पेक्ट्रमों रेखाओं के उद्‌भव" पर मिला। अन्य लेखों की तुलना में यह लेख इतना श्रेष्ठ था कि इसे ग्रिफिथ मेमोरिल पुरस्कार देने के लिए सिफारिश करने में कोई संकोच नहीं हुआ।

16 जून 1918 में साहा का विवाह राधारानी राय से हुआ। राधारानी के पिता काफी समृद्ध व्यक्ति थे। वे लोग नारायण गंज तहसील के रेखब बाजार में रहते थे। उनके व्यवसायिक हित के कार्य बारीसाल में थे जहां से उनके पूर्वज नारायण गंज में आकर बस गए। राधारानी की मां का देहावसान उनकी अल्पायु में ही हो गया और उनका पालन-पोषण दादी ने किया था। वृद्ध महिला इस विवाह के विरुद्ध थीं क्योंकि वर का कुटुंब गरीब था। लेकिन उनके पिता इस बात से हर्षोल्लासित थे कि उनका जमाता प्रेमचन्द रायचन्द अधिछात्रवृत्ति पाने वाला था। अतएव दादी के विरोध के बावजूद विवाह संपन्न हो गया। कहा जाता है कि वृद्ध महिला ने अपने पुत्र से कहा, "इस विवाह के बजाय क्यों नहीं अपनी पुत्री को पद्‌मा नदी में डुबो देते ?" वर्षों बाद, जब साहा इलाहाबाद में भली-भांति बस गए तब दादी को वे मथुरा, वृंदावन और प्रयाग की तीर्थयात्रा के लिए ले गए। "अब आपकी नातिनी कैसी है ? क्या वह पद्‌मा में डुबोए जाने से अच्छी है ?" उन्होंने पूछा। कहा जाता है कि कभी न चूकने वाली वृद्ध महिला ने प्रत्युत्तर में कहा, "आपके लिए राधा सौभाग्य लाई है।"

1919 के अंत तक साहा ने अपने पैर स्वयं चुने हुए विषय में जमा लिए। 1920 के प्रथम छह महीनों में फिलासाफिकल मैगजीन में प्रकाशित करने के लिए उन्होंने निम्नांकित अनुसंधान लेख भेजे, "सौरवर्ण मंडल का आयनीकरण" (4 मार्च, 1920); "सूर्य में विद्यमान तत्वों पर" (22 मई, 1920); "गैसों के रूप विकिरण समस्याओं पर" (25 मई, 1920); "तारों के हारवर्ड वर्गीकरण पर" (मई 1920)।

1921 में भारतीय खगोल संस्था के जरनल में इन लेखों के सारांश की प्रस्तावना प्रकाशित हुई। इन लेखों में साहा ने अपने तापीय आयनीकरण के सिद्धांत का प्रतिपादन किया और इस प्रकार खगोल भौतिकी अनुसंधान में एक नए क्षितिज का अनावरण किया।

3

अंतर्राष्ट्रीय विज्ञान क्षेत्र में प्रवेश

(1920-1922)

तापिक आयनन पर साहा का काम केवल भारतीय विज्ञान की ही प्रगति में एक बडा प्रस्फोट नहीं था वरन इससे खगोल भौतिकी के एक लगभग अछूते क्षेत्र का द्वार खुल गया जो अब तक संवृत प्रदेश था।

1814 की बात है, म्यूनिख के एक साधारण चश्मा बनाने वाले फ्राउनहोफर ने (1787-1826) सूर्य से निकले श्वेत प्रकाश के परिक्षेपण पर न्यूटन के प्रयोग को बड़ी सावधानी से दोहराया। जब उसे स्पेक्ट्रम की रंगीन पट्टियों में बहुत सी काली रेखाएं दिखाई पड़ीं तो बड़ा आश्चर्य हुआ। उनमें से छह सौ की उसने पहचान की। उसने स्पेक्ट्रम के लाल सिरे से आरंभ करके प्रमुख रेखाओं का वर्णात्मक क्रम में सूचीपत्र बनाया—जैसे, A, B. C, D1, D2, E, b1, b2, F, G1, G, g, h, H, K, H1. परंतु काली रेखाओं का रहस्य जब तक जी. आर. किरचोफ ने 1859 में उनकी उपस्थिति की व्याख्या नहीं की तब तक सुलझा नहीं। उसे प्रयोगशाला में किए गए परीक्षणों द्वारा ज्ञात हुआ कि संदीप्ति तक गर्म किए गए तत्वों के स्पेक्ट्रमों में चमकीली रेखाएं होती हैं जो तत्व की अभिलक्षणिक होती हैं। उदाहरणार्थ, विसर्जन नलिका में हाइड्रोजन की प्रमुख रेखाएं Ha (6562.8A°) और Hb (4861.37A°) फ्राउनहोफर की C एवं F रेखाओं की अनुसूची हैं। कैलसियम को गर्म करने पर फ्राउनहोफर g रेखा (4227 A°) स्पष्ट दिखाई पड़ती है पर B एवं K रेखाएं अपेक्षाकृत धुंधली। किरचोफ की व्याख्या के अनुसार सौर स्पेक्ट्रम में स्थित कर जो अनुप्रस्थ रेखाएं अवशोषण स्पेक्ट्रम बनाती हैं। सूर्य की प्रदीप्त बाहरी सतह के चमकदार संतत स्पेक्ट्रम के कुछ तरंग दैर्घ्य सौर वायुमंडल के बाह्य स्तरों में पाए जाने वाले गैसों और वाष्पों को पार करने में निर्बल पड़ जाते हैं। कुछ रेखाएं पृथ्वी के वायुमंडल में अवशोषण के कारण भी बनती हैं।

किरचोफ की खोज ने खगोल भौतिकीविदों के लिए एक नई संभावना का द्वार उन्मुक्त कर दिया। वे सूर्य तथा अन्य तारों के स्पेक्ट्रमों का विश्लेषण करने

लगे ताकि तारकीय पिंडों की भौतिक दशा और उनके रचक तत्वों की खोज की जा सके। इस प्रकार बहुत बड़ी मात्रा में सूचनाएं एकत्र हुई। रोलैण्ड ने सौर स्पेक्ट्रम में 3000A° और 7800A° के बीच 20,000 रेखाओं को अंकित किया था। इनमें से केवल 6000 रेखाओं का निश्चयपूर्वक 36 ज्ञात तत्वों की रेखाओं से तादात्म्य स्थापित किया जा सका। चूंकि पृथ्वी 92 विभिन्न तत्वों से विरचित है यह स्वाभाविक था कि सूर्य में भी इन्हीं तत्वों की खोज की जाए।

अन्य तारों के बारे में स्थिति और भी खराब थी। पीले तारों का स्पेक्ट्रम सूर्य के स्पेक्ट्रम के समान दिखाई देता था; श्वेत तारों के स्पेक्ट्रम में धातु रेखाओं के स्थान पर हाइड्रोजन की रेखाएं प्रमुखता से दिखाई पड़ती थीं और नीलाभ श्वेत तारों में कितनी ही अनजान रेखाएं थीं।

पहले तो खगोलज्ञों का ध्यान लाल सौर ज्वालाओं की ओर गया, जो बहुत ऊंचाई तक फैले होते हैं और जिनका निरीक्षण पूर्ण सूर्य ग्रहण में अधिक देर तक किया जा सकता है। 1868 में भारत में एक पूर्ण ग्रहण दिखाई पड़ा और कितने ही फ्रांसीसी, अंग्रेज और अमेरिकी खगोलज्ञ यहां आए। उस अवधि में अंग्रेज खगोलज्ञ सर नार्मन लाकियर की एक बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका थी, जिन्होंने पचास वर्ष तक खगोल भौतिकी की दिशा को प्रभावित किया। लाकियर ने एक ऐसी विधि निकाली जिससे सौर ज्वालाओं के स्पेक्ट्रम का अध्ययन, सौर ग्रहण की दुर्लभ घटना पर निर्भर न रहकर किसी भी समय किया जा सकता था। इन अध्ययनों के अंतर्गत उन्होंने एक नई रेखा D3 की खोज की जो D1 तथा D2 के निकट थी और उसकी पहचान एक नए तत्व की रेखा के रूप में की, जिसका नाम उन्होंने हिलियम रखा। लगभग उसी समय फ्रांसिसी खगोलज्ञ जैनसेन ने भी वही खोज की। तीस वर्ष बाद हिलियम को नार्वे के खनिज क्लेवाइट में पाया गया। इसके पूर्व यह कोई नहीं मानता था कि हिलियम पृथ्वी की सतह पर विद्यमान था।

सूर्य ग्रहण की पूर्णता की अवधि में वर्णमंडल के प्रथम स्पेक्ट्रम का निरीक्षण 1871 में यंग द्वारा किया गया जो प्रिंस्टन विश्वविद्यालय में खगोल के प्रोफेसर थे। ग्रहण में सौर वायुमंडल के अध्ययन से भ्रम और बढ़ा। सात रंगों का बैंड स्पेक्ट्रम अदृश्य हो गया और काली रेखाओं के स्थान पर चमकीली रेखाएं आ गई। उसने इसको क्षणदीप्ति स्पेक्ट्रम की संज्ञा दी। परंतु क्षणदीप्ति स्पेक्ट्रम का प्रथम फोटो ध्रुवों के अन्वेषक शैकिल्टन ने 1896 में लिया। तत्पश्चात 1898 में सूर्यग्रहण में वैज्ञानिकों के तीन अग्रणी समूह क्षणदीप्ति स्पेक्ट्रम का अध्ययन करने भारत आए। इन टीमों के नेता थे : सर नार्मन लाकियर, एवरशेंड और लिगमबेला। क्षणदीप्ति स्पेक्ट्रम में अंकित सारी रेखाओं की संख्या अधिक नहीं थी क्योंकि जिन यंत्रों को ग्रहण निरीक्षण केंद्रों में ले जाया जा सका उनकी क्षमता सीमित थी और ग्रहण की अवधि कम थी।

भारत में एवरशेड ने अपनी प्लेट पर लगभग 1600 रेखाएं गिनी जबकि माइकेल ने अमेरिका में अधिक अच्छे उपस्कर की सहायता से 1805 में इनकी संख्या बढ़ा कर 2500 कर दी। इन निरीक्षणों से यह प्रदर्शित हुआ कि क्षणदीप्ति स्पेक्ट्रम फ्रानहोफर स्पेक्ट्रम का विपर्यास था। फ्रानहोफर स्पेक्ट्रम की प्रत्येक काली रेखा के लिए क्षणदीप्ति स्पेक्ट्रम में एक चमकीली रेखा होती है, परंतु उनमें अंतर भी महत्वपूर्ण थे। उदाहरणार्थ, फ्रानहोफर स्पेक्ट्रम में एक भी हिलियम रेखा का चिह्न नहीं था। दूसरी ओर क्षणदीप्ति स्पेक्ट्रम में हिलियम की लगभग बीस रेखाएं थीं। इसी प्रकार की विषमता हाइड्रोजन रेखाओं में भी दिखाई पड़ी। सूर्य के वर्ण मंडल, सौर किरीट, प्रकाश मंडल तथा अन्य ताक पिंडों से प्राप्त स्पेक्ट्रमों के विश्लेषण और उनके परिणामों की तुलना विभिन्न तत्वों के प्रयोगशाला में लिए गए स्पेक्ट्रमों से करने पर बिल्कुल विपरीत निष्कर्ष निकलते थे। लाकियर की व्याख्या थी कि एक ही तत्व अनेक रूपों में विद्यमान था। सौर वायुमंडल के अध्ययन ने भ्रांति में और वृद्धि कर दी। फ्रानहोफर की H तथा K रेखाओं से कैल्शियम की पहचान होती है। यह पाया गया है कि ये रेखाएं सूर्य के वायुमंडल के उच्चतम स्तर (पृष्ठ से 14000 कि.मी.) पर अति स्पष्ट होती हैं जब कि हाइड्रोजन 8000 कि.मी. की ऊंचाई तक पहुंचता है। यह विषम पहेली थी। यदि सूर्य पर गुरुत्वाकर्षण ही एक मात्र बल होता है तब इसका प्रभाव Ca परमाणु पर H परमाणु की अपेक्षा चालीस गुना अधिक प्रबल होना चाहिए। हाइड्रोजन को उच्चतम स्तर पर होना चाहिए और तदुपरांत अन्य तत्वों को अपने अपने परमाणु भार के अनुरूप स्थानों पर होना चाहिए। वास्तव में सूर्य की संहति का विचार किया जाए तो कोई वातावरण होना ही नहीं चाहिए। यह तो पृथ्वी पर ज्ञात भौतिक नियमों का घोर उल्लंघन प्रतीत होता था।

इन उपात्तों ने अधिवर्धित रेखाओं, हाइड्रोजन, कैल्शियम एवं अन्य तत्वों के आदि रूप की उपस्थिति, एक नए तत्व कोरोनियम, और लाकियर की अजैविक विकास की परिकल्पना के संबंध में अनेक कल्पनाओं को जन्म दिया। इनमें से कोई भी पूरी तरह स्वीकार नहीं की गई और खगोल भौतिकी के अध्ययन का अर्थ था बिना समझे उपात्तों का संकलन। मेघनाद साहा ही थे जिन्होंने अपने तापिक आयनन सिद्धांत के प्रकाशन के साथ खगोल भौतिकी की समस्याओं में इसका अनुप्रयोग प्रदर्शित किया।

विगत शताब्दी के पिछले तीस वर्षो और वर्तमान के प्रथम बीस वर्षों में जब स्पेक्ट्रमी उपात्तों को सारणीबद्ध किया जा रहा था, भौतिक संसार की क्लासिकी संकल्पना में अगाध परिवर्तन हो गया। इसका प्रारंभ 1896 में सर जे.जे. थामसन के इलेक्ट्रान के आविष्कार से हुआ। इसके बाद कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण आविष्कार हुए : 1900 में मैक्स प्लांक द्वारा क्वांटम सिद्धांत का प्रतिपादन, 1906 में नेर्न्स्ट

द्वारा ऊष्मा प्रमेय का निरूपण, 1911 में रदरफोर्ड का परमाणु नाभिक का सिद्धांत और 1916 में बोर का परमाणु स्पेक्ट्रमों के उद्‌भव का सिद्धांत। मेघनाद ने खगोल विज्ञान और खगोल भौतिकी के प्रति अपने अतीव झुकाव के कारण सूर्य तथा तारों पर ऐगनेस क्लार्क द्वारा लिखित पुस्तकों को पढ़ लिया था। उस समय इस क्षेत्र में व्याप्त गुत्थियों और रहस्यों से उनको उलझन थी जिससे प्रेरित होकर उन्होंने खगोल भौतिकी में अपना पहला काम किया—'वरणात्मक विकिरण दाब' और सौर वायुमंडल में तत्वों के क्रमिक वितरण में इसकी भूमिका की संकल्पना का प्रतिपादन।

1916 से 1919 के बीच के वर्षो में कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर विद्यार्थियों को पढ़ाते हुए भौतिकी में हुए अद्यतन विकास से साहा ने अपने को परिचित रखा। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, वे नील बोर एवं आर्नल्ड समरफिल्ड द्वारा परमाणु के क्वांटम सिद्धांत पर लिखित अनुसंधान निबंधों से परिचित हो गए। बात यह हुई कि वे विद्यार्थियों को ऊष्मागतिकी पढ़ा रहे थे और अपनी आदत के अनुसार इस विषय पर उपलब्ध सभी चीजों को पढ़ डाला जिसमें प्लांक का थर्मोडाइनेमिक्स और नर्न्स्ट के डास नेयू वार्मसाल्त्स भी थे। इस सैद्धांतिक तैयारी और खगोल भौतिकी के उपात्तों से लैस होकर उन्होंने समस्या का समाधान ढूंढ़ने में अपना दिमाग लगाया।

साहा इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सूर्य एवं अन्य तारक पिंडों में जो कुछ भी होता था वह उनमें विद्यमान उच्च ताप के कारण था। पृथ्वी की प्रयोगशालाओं में उतना उच्च ताप पाया जाना आसान नहीं है। साधारणतया ऊष्मागतिकी का उपयोग द्रवण एवं वाष्पन जैसे भौतिकी प्रक्रमों और अणुओं के परमाणु में अपघटन अथवा वियोजन जैसे रासायनिक प्रक्रमों के विवेचन में किया जाता है। किसी पदार्थ को जब गलनांक के ऊपर गर्म किया जाता है तब वह द्रव बन जाता है और अधिक गर्म करने पर द्रव गैस के रूप में बदल जाता है। जब गैस को और भी अधिक गर्म किया जाता है तब क्या होता है ?

बोर के माडल में परमाणु के केंद्र में एक क्रोड होता है जो न्यूक्लियस कहलाता है। न्यूक्लियस घनात्मक आवेश युक्त होता है और यह कई इलेक्ट्रानों से घिरा होता है जो विभिन्न कक्षाओं में भिन्न भिन्न क्वांटम स्तरों पर घूमते रहते हैं। उच्च ताप द्वारा दिया गया उद्दीपन इलेक्ट्रानों में स्थानांतरित हो जाता है और यथेष्ठ उद्दीपन से एक या अधिक इलेक्ट्रान न्यूक्लियस से वियुक्त हो जाता है जिसके कारण एक घनात्मक आयन और वियुक्त इलेक्ट्रान बन जाते हैं। उस परिघटना को जिसमें एक अनाविष्ट परमाणु वियोजित होकर एक घनात्मक आयन और एक इलेक्ट्रान में परिणित हो जाता है आयनन कहते हैं। किसी परमाणवीय ऊर्जा स्तर से एक इलेक्ट्रान को वियुक्त करने के लिए आवश्यक ऊर्जा को आयनन

विभव कहा जाता है। जब आयनन गर्म करने से उत्पन्न होता है तब इसे तापीय आयनन कहते हैं।

आइए हम कैल्शियम परमाणु का उदाहरण लें। कैल्शियम परमाणु का आयनन भौतिक रसायन में परिचित इस योजनानुसार होता है–

$$Ca = Ca^{+} + e\text{-}U$$

जिसमें Ca कैल्शियम का सामान्य परमाणु है। (वाष्प की अवस्था में), Ca^{+} ऐसा परमाणु है जिसमें से एक इलेक्ट्रान निकल गया है। U इस प्रक्रम में विमोचित ऊर्जा है। विचाराधीन मात्रा एक ग्राम परमाणु है।

रसायन का एक प्रसिद्ध नियम यह है कि जब कोई संकर अणु जैसे NH_4Cl (अमोनियम क्लोराइड) ऊष्मा के प्रभाव से NH_3 तथा Kcl जैसे सख्त अणुओं में एक विशेष ताप एवं दाब पर खंडित हो जाता है, तब अवियुक्त तथा वियुक्त अणुओं की संख्या में एक निश्चित अनुपात होता है। ताप एवं दाब के फलन के रूप में वियोजन की मात्रा की गणना की जा सकती है यदि क्रिया की ऊष्मा और पदार्थो की विशिष्ट ऊष्मा तथा वाष्प दाब ज्ञात हों। नेन्स्र्ट के एक विद्यार्थी इगर्ट के मन में विचार उठा कि भौतिक रसायन के समीकरण कुछ परिवर्तनों के साथ तारक संहतियों के तत्वों में आयनन की गणना करने के लिए प्रयुक्त किए जा सकते हैं। इगर्ट का ध्येय तारों के अंतर्प्रदेश के आयनन संबंधी एर्डिगृन की परिकल्पना का सत्यापन करना था। साहा ने जब इस लेख को देखा तब तुरंत इसकी महती संभावनाओं को समझ लिया। उन्होंने स्पेक्ट्रमी उपात्तों अथवा प्रयोगों से उपलब्ध आयनन विभवों से आयनन ऊर्जाओं का ठीक ठीक मान निकाला और ऊष्मागतिकी के अपने ज्ञान एवं रासायनिक नियतांकों को प्रयुक्त कर अपने इस प्रसिद्ध समीकरण को प्राप्त किया :

$$\log \frac{x}{1 - x^2} P = \frac{U}{2.3RT} + \frac{5}{2} \log T - 6.5$$

जिसमें P सकल दाब है, x आयनित परमाणु का टुकड़ा है, U आयनन ऊष्मा है R सार्वभौम गैस नियतांक और T कैल्विन मात्रकों में ताप है।

रसायन में U का निर्धारण कैलारीमापी प्रयोगों से किया जाता है, जब कि वर्तमान मामले में U को स्पेक्ट्रमी उपात्तों तथा आयनन विभव के प्रायोगिक मानों से निर्धारित किया जा सकता है। "सूर्य के वर्ण मंडल का आयनन" पर अपने लेख में साहा ने इस समीकरण का निगमन इतनी सरलता एवं सुंदरता से किया है कि आश्चर्य होता है कि पहले क्यों नहीं किसी ने इसका निगमन किया ? साहा ने इस समीकरण का उपयोग उस पहेली को सुलझाने में किया जो इसके पूर्व के पचास वर्षों में खगोल भौतिकी के निरीक्षणों से उत्पन्न हुई थी। उन्होंने यह दिखलाया

कि वर्णमंडल के उच्च ऊर्जा स्तर मूल्य रूप में कैल्शियम, बेरियम, स्ट्रांशिम, स्कैंडियम, टिटेनियम और लौह के आयनित परमाणुओं से बने हैं। समीकरण आयनन की मात्रा पर दाब के अत्यधिक प्रभाव को भी दर्शाता है और इससे भी उन अनेक विषमताओं का हल निकल गया जो पहले नहीं समझी जा सकी थीं। उनके आगामी तीन शोध लेख—"सूर्य में तत्व", "गैसों में ताप विकिरण की समस्याओं पर", "तारक स्पेक्ट्रमों के भौतिक सिद्धांत पर"—(यह पहले के अनुसंधान लेख का जिसका शीर्षक था "तारों के हार्वर्ड वर्गीकरण पर" और जिसका उल्लेख पूर्व अध्याय में दिया गया है, संशोधित रूप था)—क्रमशः जल्दी जल्दी प्रकाशित हुए और सारे जगत में एक स्तर से इनका स्वागत अग्रणी रचनाओं के रूप में किया गया। इसका एक रोचक और सद्य फल यह था कि साहा ने केवल इसी की व्याख्या नहीं की कि क्यों सूर्य के स्पेक्ट्रम में Cs एवं Rb की रेखाएं अनुपस्थित होनी चाहिए वरन इसकी प्रागुक्ति भी की कि इन रेखाओं को सूर्य के धब्बों जैसे ठंडे क्षेत्रों में दिखाई पड़ना चाहिए। Rb की रेखाएं माउन्ट विल्सन वेधशाला के फोटोग्राफों के रिकार्डों से साहा के सिद्धांत के प्रकाशन के पूर्व, सचमुच निकाली गई।

इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के लिए तारों पर लिखे गए अपने लेख में सर आर्थर एडिंग्टन[14] ने साहा के तापिक आयनन सिद्धांत को फेब्रिसियस के 1596 में प्रथम चरकांति तारा (मीरा सेटी) की खोज के बाद खगोलिकी की प्रगति में बारहवां सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूचिह्न बताया है।

एस. रोज़लिन्ड[15] ने अपनी प्रसिद्ध थियोरेटिकल अस्ट्रोफिजिक्स की प्रस्तावना में लिखा है, "यद्यपि बोर को (इस प्रकार) इस क्षेत्र में अग्रणी मानना चाहिए, तथापि भारतीय भौतिकीविद साहा को ही इस बात का श्रेय है कि उन्होंने ही सर्वप्रथम (1920) परमाणु सिद्धांत के दृष्टिकोण से तारों के स्पेक्ट्रमी अनुक्रम को एक संगत सिद्धांत विकसित करने का प्रयास किया। वास्तव में साहा का काम आधुनिक ढंग से लाकियर से विचार का सैद्धांतिक निरूपण है।" उस समय से यह विचार कि स्पेक्ट्रमी अनुक्रम उत्तरोत्तर तत्वांतरण का द्योतक है निश्चित रूप से छोड़ दिया गया है। उस समय से इस आशा का दिन उदय हुआ कि तारकीय स्पेक्ट्रमों के पर्याप्त विश्लेषण द्वारा तारकीय वायुमंडलों की स्थिति की पूर्ण जानकारी उपलब्ध हो सकती है। यह जानकारी केवल उनके रासायनिक संघटन के ही बारे में नहीं होती बल्कि उनके ताप और तापीय संतुलन की स्थिति से विविध विचलनों, विभिन्न तत्वों का घनत्व वितरण, वायुमंडल में गुरुत्व का मान और इसकी गति की अवस्था के बारे में भी। साहा के काम से खगोल भौतिकी को इतना अधिक प्रोत्साहन मिला कि उसका अनुमान लगाना भी कठिन है, क्योंकि इस क्षेत्र में बाद में हुई लगभग सारी प्रगति इससे प्रभावित हुई है और बाद का अधिकांश कार्य साहा के विचारों

का परिष्कृत रूप जैसा है।

आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय की वेधशाला के प्रोफेसर एच.एच. प्लेस्केत को लिखे 18 दिसंबर 1946 के एक पत्र[16] में साहा ने अपने ही शब्दों में इस बात का वर्णन किया है कि कैसे उन्होंने इस सूत्र की खोज की। "जब मैं खगोल भौतिकी की समस्याओं पर विचार कर रहा था और एम.एससी. की कक्षाओं में ऊष्मागतिकी तथा स्पेक्ट्रमिकी पढ़ा रहा था तभी 1919 में तापीय आयनन के सिद्धांत का मेरे मस्तिष्क में निश्चित रूप उभरा। मैं जर्मन पत्रिकाओं को नियमित रूप से पढता था, जो प्रथम विश्वयुद्ध के चार वर्ष बाद ठीक तभी आने लगी थीं। इन अध्ययनों के अंतर्गत मैंने जे. इगर्ट द्वारा लिखित फिजिकेलिस्वे ज़ाइत्सक्राइफ्ट के दिसंबर 1919 अंक (पृष्ठ 573) में एक लेख देखा। लेख का विषय "यूबेर डेन डिसोसियेशनाजुस्टेंड डर फिक्स्टर्नगैस" था जिसमें उसने उच्च ताप के कारण तारों में हुए उच्च आयनन की व्याख्या नेर्न्स्ट के ऊष्मा प्रमेय द्वारा की थी। उच्च ताप के कारण तारों में उच्च आयनन होता है, इसका प्रतिपादन एडिंग्टन ने अपनी तारकीय संरचनाओं के अध्ययन के समय किया था।

"इगर्ट ने, जो नेर्न्स्ट का शिष्य था और उस समय उसका सहायक था, तापिक आयनन का एक सूत्र दिया था। पर यह अपेक्षाकृत आश्चर्य की बात है कि उससे परमाणुओं के आयनन विभव की सार्थकता पर ध्यान देने में भूल हो गई, जिसका महत्व बोर के सैद्धांतिक काम से और फ्रैंक एवं हर्त्स के प्रायोगिक कार्य से स्पष्ट था। इन दोनों के कार्य ने उन दिनों यथेष्ट ध्यान आकर्षित किया था...। इगर्ट ने रासायनिक नियतांक के सैकर सूत्र का उपयोग इलेक्ट्रान के नियतांक के गणन के लिए किया था, परंतु तारों के भीतरी भागों में लौह परमाणु के बहु आयनन का कारण बताने के प्रयास में उसने आयनन विभव के अतिकृत्रिम मानों का उपयोग किया था।

"जब मैं इगर्ट का लेख पढ़ रहा था उसी समय मुझे तुरंत उसके सूत्र में आयनन विभव के मान को प्रयुक्त करने का महत्व स्पष्ट हो गया जिससे ताप एवं दाब के किसी भी संयोजन के अंतर्गत किसी तत्व विशेष के एक या बहु आयनन की गणना यथार्थता पूर्वक की जा सके।

"इस प्रकार मुझे वह सूत्र मिला जो अब मेरे नाम से जाना जाता है। वर्णमंडलीय तथा तारकीय समस्याओं से पहले से परिचित होने के कारण मुझे तुरंत इसका अनुप्रयोग समझ में आ गया। मैंने छह महीने में तैयार करके इनको भारत से फिलोसाफिकल मैगजीन में प्रकाशन के लिए भेज दिया।"

तापीय आयनन के समीकरण में डार्विन, फाउलर, मिल्ने, बेकर तथा अन्य लोगों द्वारा बाद में सुधार किया गया ताकि इसमें अनेक सूक्ष्म ब्यौरों का समावेश हो सके। यह बड़ी अनोखी बात है कि ऊष्मा के अनुप्रयोग से अणुओं के वियोजन

की धारणा सर नार्मन लाकियर के मन में 1974 में ही उठी थी। सर नार्मन की स्मृति में समर्पित एक ग्रंथ में साहा ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए एक लेख 'वियोजन संतुलन' पर लिखा। लाकियर ने संबंधित दत्तों को एकत्र करके उन्हें सुनियोजित रूप में व्यवस्थित किया परंतु वे अधिकांश वैज्ञानिकों को मान्य कोई सिद्धांत बनाने में असमर्थ रहे। जब साहा ने लाकियर के दत्तों का उपयोग करके अपूर्व स्पष्टता से उनकी व्याख्या की तब लेडी एल.एम. लाकियर ने अत्यंत आभार प्रकट किया क्योंकि उन्होंने सर नार्मन को अनादर एवं विपरीत आलोचना से बचाया जिसे उन्हें अपनी जीवितावस्था में सहना पड़ा था।

तापीय आयनन के सिद्धांत से सौर वर्णमंडल की विस्तृत व्याख्या हो गई परंतु किरीट और कोरीनियम की समस्या का समाधान न हो सका। अनेक वर्षो के बाद साहा ने एक लेख "सौर किरीट के भौतिक सिद्धांत पर" प्रकाशित किया।

तापिक आयनन के सिद्धांत के निगमन के बाद साहा यूरोप जाने के लिए बड़े उत्सुक थे ताकि वे स्वयं अपने सिद्धांत के सत्यापन के लिए उचित प्रयोगशाला की खोज कर सकें। प्रेमचन्द रायचन्द अधिछात्रवृत्ति से प्राप्त धन एवं ब्राह्मो एजुकेशन सोसाइटी द्वारा मिले संरक्षण से वे यूरोप की अति मनोवांछित यात्रा करने में सफल हुए।

साहा ने इंग्लैंड की यात्रा अपने अध्यापक तथा मार्गदर्शक आचार्य पी.सी. रे की रुचिकर संगत में प्रसन्नतापूर्वक संपन्न की। साथ में कुछ अन्य लोग भी थे, जैसे डा. जीवराज मेहता, प्रोफेसर एन.के. सिद्धांत, नृवैज्ञानिक डा. बी. एस. गुहा और आगरा के प्रोफेसर के.सी. मेहता। इंग्लैंड में साहा अपने सहपाठियों जे.एन. मुकर्जी, जे.सी. घोष और स्नेहमय दत्त से मिले। स्नेहमय दत्त ने साहा को परामर्श दिया कि वे आक्सफोर्ड या कैम्ब्रिज जाने की बजाय प्रोफेसर फाउलर से मिलें। साहा को जो वृत्तिका मिल रही थी वह इन विश्वविद्यालयों में ठहरने के लिए अपर्याप्त थी। इसलिए साहा ने लंदन में ही रुके रहने का निश्चय किया। इस अवधि में ही वे डा. एस.एस. भटनागर से मिले। जब साहा ने प्रोफेसर फाउलर की प्रयोगशाला में काम करने की इच्छा व्यक्त की तब साहा को अपने यहां रखने में उन्होंने अतीव प्रसन्नता प्रकट की। स्पेक्ट्रमिकों तथा खगोल भौतिकी में फाउलर की विशेष रुचि थी और साहा जिनका तापिक आयनन के सिद्धांत पर लेख ठीक उसी समय प्रकाशित हुआ था कोई अज्ञात भारतीय नहीं थे। उस समय तारकीय स्पेक्ट्रमों पर अधिकांश अनुसंधान कार्य इंग्लैंड और जर्मनी में हो रहा था। फाउलर ने साहा को राय दी कि वे बर्लिन जाकर प्रोफेसर नेर्न्स्ट से अपने सिद्धांत के प्रायोगिक सत्यापन के लिए उनके साथ काम करने की अनुमति प्राप्त करें। साहा प्रख्यात सर जे.जे. थामसन से भी मिले और तापिक आयनन के सिद्धांत पर उनसे विचार-विमर्श किया। परंतु प्रसिद्ध कवेन्डिश प्रयोगशाला में उच्च ताप पर काम करने की सुविधाएं

नहीं थीं; अतएव वहां कार्य करना लाभदायक नहीं होता।

प्रथम विश्वयुद्ध का तभी अंत हुआ था और स्वभावतः जर्मनी में ब्रिटेन के निवासियों और उसकी प्रजा के प्रति रोष का भाव था। परंतु आश्चर्य की बात है कि साहा का निवेदन स्वीकार हो गया जिससे अनेक ब्रिटिश और अमेरिकी वैज्ञानिक वंचित रह गए थे।

साहा वहां एक वर्ष काम कर अपने सिद्धांत के संबंध में प्रयोग करते रहे। यह वर्ष सार्थक था; उनको आइन्स्टाइन, प्लांक तथा अन्य भौतिकीविदों के संपर्क में आने का अवसर प्राप्त हुआ। साहा को म्युनिख में व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया गया। कविवर रवीन्द्रनाथ वहीं थे और साहा अपना सम्मान प्रकट करने के लिए उनके पास गए। टैगोर ने उन्हें शांतिनिकेतन में पदार्पण करने का निमंत्रण दिया जिसे उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया।

साहा ने स्विटजरलैंड में एक माह व्यतीत किया और कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि के रूप में लंदन में हुए एक सम्मेलन में भाग लिया। आक्सफोर्ड से वे कैम्ब्रिज गए। सर आर्थर एडिंग्टन ने उन्हें अपने घर आने का निमंत्रण दिया। वे महान चार्ल्सडार्विन के पौत्र सी.जी. डार्विन से भी मिले। सब मिलाकर साहा का यूरोपीय अनुभव बहुत लाभप्रद रहा। इससे उनके जीवन का प्रमुख दर्शन "तुम्हें अपने काम पर डटे रहना चाहिए, मान्यता अवश्य मिलेगी" की पुष्टि हुई।

साहा के जर्मनी से शीघ्रतापूर्वक लौटने का कारण सर आशुतोष का एक आवश्यक संदेश था जिसमें उन्हें तुरंत वापस आने और भौतिकी के खैरा प्रोफेसर के पद को सम्हालने के लिए कहा गया था।

ब्रिटिश वैज्ञानिकों की आम धारणा है कि मेघनाद साहा ने अपना लेख "तारकीय स्पेक्ट्रमों के भौतिकी सिद्धांत पर" प्रोफेसर फाउलर के साथ काम करते समय लिखा था। सर नार्मन लाकियर के जीवनचरित[17] में प्रोफेसर ए.जे. मिडोज ने इस लेख की रचना के संबंध में निम्नलिखित विवरण दिया है :

"लाकियर की मृत्यु के कुछ ही दिनो बाद एक भारतीय भौतिकीविद एम. एन. साहा फाउलर के अंतर्गत काम करने के लिए इम्पीरियल कालेज में आया। इस प्रवास में जो लेख उसने "तारकीय स्पेक्ट्रमों के भौतिक सिद्धांत पर" लिखा उसमें दिखाया गया है कि तारों के स्पेक्ट्रमों को कैसे वियोजन संकल्पना के साथ परमाणु के नवीन क्वांटम सिद्धांत के आधार पर समझा जा सकता है। प्रारंभ के कुछ विरोध के बाद, उसके निष्कर्ष शीघ्र ही मान लिए गए। इस सिद्धांत द्वारा दिखाया गया कि ताप एवं दाब दोनों ही तारकीय वायुमंडलों में परमाणुओं के वियोजन को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार लाकियर और उनके विरोधी दोनों ही अंशतः ठीक थे। लाकियर के प्रति यह कहना न्याय ही होगा कि तारकीय स्पेक्ट्रमों पर ताप का प्रभाव दाब के प्रभाव से कहीं अधिक अभिलक्षित होता है।

"लाकियर के कार्य के अन्य पहलू जैसे सौर वायुमंडल की सरंचना पर अथवा तारकीय स्पेक्ट्रमों के वर्गीकरण पर अमान्य हो गए थे या उसकी मृत्यु होते ही भुला दिए गए थे। इस प्रकार साहा का प्रारंभ में विचार था कि उसका "तारकों के हार्वर्ड वर्गीकरण पर" लेख मंगाया जाए। फाउलर ने उन्हें बताया कि इस क्षेत्र में कुछ पथ प्रदर्शन कार्य साउथ केन्सिग्टन में किया गया था।"

स्वयं साहा द्वारा लिखित निम्न पैराग्राफ से बात स्पष्ट हो जाएगी :[18]

"प्रोफसेर ए. फाउलर से मेरा व्यक्तिगत परिचय नहीं था सिवाए इसके कि मैंने अव्यनित हेलियम के स्पेक्ट्रम पर उनका लेख पढ़ा था।

"इंग्लैंड पहुंचने पर मैं प्रोफेसर अलबर्ट फाउलर से मिला; पहले उन्होंने समझा कि उनके तत्वावधान में काम करने वाले अन्य भारतीय विद्यार्थियों की भांति मैं लंदन विश्वविद्यालय की डी.एससी. उपाधि के लिए काम करने आया हूं। परंतु जब मैंने उन्हें बताया कि मैं थोड़े समय के लिए वहां रहकर अपने सिद्धांत का सत्यापन करना चाहता था, तब वे अधिक उत्साहित नहीं हुए, परंतु अपनी प्रयोगशाला में पढ़ने और काम करने की अनुमति प्रदान कर दी। संभवतः प्रथम भेंट में मेरी बात सुनने के लिए उनके पास यथेष्ट समय नहीं था। यह बात नवंबर 1920 की है। यदि आप इम्पीरियल कालेज के अभिलेखों को देखें तो ज्ञात होगा कि मैंने उपाधि हेतु काम करने के लिए कभी नाम नहीं लिखाया। इसी बीच भारत से प्रेषित मेरा प्रथम लेख "सौर वर्णमंडल में आयनन" मिला—फिलोसाफिकल मैगजीन में प्रकाशित हो गया था। इसका श्रेय जर्मन के प्रकाशक मि. फ्रांसिस से की गई मेरी व्यक्तिगत बात को है। इसके प्रकाशन के बाद प्रोफेसर फाउलर मेरे काम तथा मेरे विचारों में अधिक रुचि लेने लगे। मैंने उनको अपना लेख "तारकीय स्पेक्ट्रमों का हार्वर्ड वर्गीकरण पर" दिखाया। उन्होंने इसे बड़े ध्यान से पढ़ा और इस बात पर मेरे साथ तर्क किया कि केवल हार्वर्ड के खगोल भौतिकीविद ही जिनमें प्रोफेसर पिकरिंग तथा कुमारी कैनन भी थीं, ऐसे व्यक्ति नहीं थे जिन्होंने इन विषयों पर योगदान किया है बल्कि इन अनुसंधानों में अग्रणी होने का श्रेय लाकियर को दिया जाना चाहिए। उन्होंने लाकियर के, अपने विद्यार्थियों के और अपने सभी लेख मुझे दिए। उन्हें देखने के बाद फाउलर के मत की सच्चाई का मुझे विश्वास हो गया और उसके प्रस्ताव पर मैंने अपने लेख का शीर्षक बदल कर "तारकीय स्पेक्ट्रमों के भौतिक सिद्धांत पर" रख दिया। मूल लेख फिलासाफिकल मैगजीन के कार्यालय से वापस मंगा लिया गया और फाउलर ने कृपापूर्वक इसे रायल सोसाइटी को भेज दिया जहां से इसका प्रकाशन हुआ। लेख (2) एवं (4) फिला. मैगजीन में प्रकाशित हुए थे।

इस लेख को पुनः लिखने में मुझे चार महीने लगे और पूरे समय मुझे प्रोफेसर फाउलर की आलोचना तथा स्पेक्ट्रमिकी एवं खगोल भौतिकी संबंधी उनके अप्रतिम

ज्ञान-भंडार तक पहुंचने का लाभ प्राप्त हुआ। यद्यपि लेख के मुख्य विचार और ध्येय अपरिवर्तित रहे पर फाउलर द्वारा कृपापूर्वक नवीन दत्तों के उपलब्ध किए जाने और उत्साह के कारण थोड़ा भी भटकने पर आलोचना करने से विषय-वस्तु में बहुत सुधार हुआ।

"उदाहरणार्थ, वह बार बार कहते थे कि तारकीय स्पेक्ट्रमों में हाइड्रोजन और सौर वर्णमंडल में हीलियम आयनन सिद्धांत की बिलकुल अवज्ञा करते हैं। इन तथ्यों ने बाद में इस धारणा को जन्म दिया कि तारों में हाइड्रोजन का आधिक्य होता है लेकिन मेरे विचार से हीलियम की असंगति के लिए अभी तक कोई संतोषजनक संकल्पना नहीं प्रस्तुत की गई है। एक संकल्पना का सुझाव मैंने अपने लेख "सौर किरीट के भौतिक सिद्धांत पर" में प्रस्तावित किया है। "तारकीय स्पेक्ट्रमों के भौतिक सिद्धांत पर" मेरा लेख रायल सोसाइटी की एक बैठक में पढ़ा गया और प्रोफेसर फाउलर ने इस काम के बारे में बड़े उत्साह से बातें कीं। उन्होंने कहा कि 1859 में किरचोफ के स्पेक्ट्रम विश्लेषण के बाद खगोल भौतिकी में यह सर्वोच्च योगदान था और प्रागुक्ति की कि इससे बहुसंख्यक लेखों को प्रोत्साहन मिलेगा।"

4

समेकन के वर्ष

(1923-1938)

कलकत्ता के साइंस कालेज में लौटकर साहा ने अपने को विचित्र स्थिति में पाया। गुरु प्रसाद सिंह पीठ एक दान के द्वारा स्थापित की गई थी, परंतु राज्यपाल ने सर आशुतोष की विस्तार-योजना को स्वीकृति नहीं प्रदान की। साहा ने पाया कि धन की कमी के कारण उनके हाथ बंधे हुए थे। सर आशुतोष आर्थिक मामले को लेकर एक विकट लड़ाई में उलझ गए थे और कोई समाधान दिखाई नही पड रहा था। राज्यपाल लार्ड रोनाल्डशे ने मुक्तकंठ से आशुतोष के स्नातकोत्तर विभागों के कार्य की प्रशंसा की पर उसी भाषण में कहा कि "एक गरीब देश में इस प्रकार के अध्ययनों को सरकारी कोष से धन देने की स्पष्ट सीमाएं हैं। मुझे आशा है कि वर्तमान कठिनाई में विधान सभा विश्वविद्यालय को कुछ अधिक योगदान देने को तैयार होगी। पर स्वयं विधान सभा के पास अत्यंत अल्प धन है, और इसके सामने अनेक आवश्यक मांगें हैं। इस स्थिति में मैं समझता हूं कि विश्वविद्यालय को विचार करना होगा कि क्या प्रत्येक उस विषय के लिए स्नातकोत्तर अध्यापन की व्यवस्था करने के लिए यह बाध्य है, जिसमें परीक्षा लेने और उपाधि देने के लिए तैयार है।"

बाद की घटनाओं से प्रकट हुआ कि विधान सभा का ऐसा कोई मन्तव्य नहीं था। 1922-23 के बजट में ढाका विश्वविद्यालय के लिए 9 लाख का प्रावधान था पर कलकत्ता को केवल 1,41,000 रुपयों के वार्षिक अनुदान से संतोष करना पड़ा। शिक्षा मंत्री ने तीखे शब्दों में विश्वविद्यालय की 'आपराधिक विचारशून्यता' की चर्चा की जिसके कारण इसने वित्तीय पक्ष की अनदेखी की और 'भारत सरकार से अंशदान पाने की आशा मात्र' में कार्य किया।

आशुतोष इसे चुपचाप सहन करने वाले नहीं थे। 1922 के अपने दीक्षांत भाषण में उन्होंने इसका उत्तर दिया और स्पष्ट किया कि विस्तार की योजनाएं न तो आकस्मिक थीं न मनमानी। 1922 में सरकार ने कुछ शर्तो के साथ ढाई लाख

रुपयों का अनुदान देने की इच्छा प्रकट की थी। आशुतोष ने यह कहकर इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया, "हम सरकारी सचिवालय का हिस्सा नहीं बनेंगे...यदि आप मुझे एक हाथ से दासता देते हैं और दूसरे से धन तो मैं प्रस्ताव की उपेक्षा करता हूं। हम लोग रुपया नहीं लेंगे। हम कटौती करेंगे और अपने साधनों के अंदर रहेंगे। हम लोग घर घर घूमेंगे...और बंगाल के लोगों को उनका उत्तरदायित्व समझाएंगे। हमारे स्नातकोत्तर अध्यापक भूखों मर जाएंगे पर अपनी स्वतंत्रता नहीं छोड़ेंगे।"

यह खुले युद्ध की घोषणा थी। और 1923 में संकट के और गहरा होने के लक्षण दिखाई दे रहे थे। ऐसी स्थिति में जब जनमत स्पष्ट रूप से आशुतोष के पक्ष में था, धन की कमी के कारण विश्वविद्यालय छोड़ने के निश्चय से साहा के विरुद्ध भावना जाग्रत हुई।

साहा प्रथम चरण के रूप में X- किरण की प्रायोगिक व्यवस्था करने की पहले से ही योजना बना रहे थे क्योंकि भौतिकी विभाग में तत्संबंधी उपस्करों की कमी थी। प्रोफेसर रामन के प्रयोग इंडियन एसोसिएशन में किए जा रहे थे। रामन जो भौतिकी के विभागाध्यक्ष थे और साहा के बीच गंभीर मतभेद उठ खड़ा हुआ। सर आशुतोष की रामन के प्रति स्पष्ट अधिमान्यता से प्रेरित होकर साहा अन्य स्थानों में अवसर ढूंढ़ने लगे। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय ने उन्हें 750-1000 रुपए का वेतनमान तथा साथ में एक अनुसंधान अनुदान देने का प्रस्ताव किया था। खैरा प्रोफेसर के रूप में वे 500 रुपया मासिक और गृहस्थ भत्ता पा रहे थे। परंतु, उन्होंने एक पत्र द्वारा सिंडीकेट से आर्थिक सहायता के लिए निवेदन किया।

"मैं अपनी अल्मामेटर (मातृवत संस्था) की सेवा करते रहने का इच्छुक हूं यदि विश्वविद्यालय क्रमिक वेतनमान अर्थात 650-50-1000 रुपए और 5000/- रुपए की अतिरिक्त राशि मेरे व्यक्तिगत अनुसंधान अनुदान के रूप में तुरंत मुझे देने को तैयार हो।" सिंडीकेट का उत्तर था "विश्वविद्यालय की आर्थिक अवस्था को देखते हुए और विश्वविद्यालय के अन्य अध्यापकों के दावों का विचार करते हुए उनका अनुरोध स्वीकार नहीं किया जा सकता।"

साहा के विश्वविद्यालय छोडने के निर्णय पर कलकत्ता रिव्यू ने कठोर प्रहार किया; परतु साहा के पास इस निर्णय के लिए न्यायोचित कारण थे।

जो भी हो, उनके पास प्रस्तावों की कमी नहीं थी। अलीगढ़, बनारस और इलाहाबाद से प्रस्ताव आए। साहा ने अंतिम अर्थात इलाहाबाद को चुना। कोडाइकनाल की सौर वेधशाला में नियुक्ति का निमंत्रण उन्होंने पहले ही अस्वीकार कर दिया था। इलाहाबाद को भारत के पांच सबसे पुराने विश्वविद्यालयों में से एक होने का अपूर्व गौरव प्राप्त था। कलकत्ता, बंबई एवं मद्रास विश्वविद्यालयों के तीस वर्ष बाद और पंजाब के केवल पांच वर्ष बाद इसकी स्थापना हुई थी। संभवतः उनके इलाहाबाद चुनने का एक कारण यह था कि उनके दो वरिष्ठ मित्र ए.सी.

बैनर्जी तथा एन.आर. धर वहां पर पहले से विद्यमान थे। एन.आर. धर भारतीय विज्ञान के अब भी ऐतिहासिक ख्याति के पुरुष माने जाते हैं। साहा दोनों की राय का सम्मान करते थे। इसके अतिरिक्त इलाहाबाद में प्रोफेसर का वेतन अधिक था और साहा को विभागाध्यक्ष भी बनना था क्योंकि वहां कोई भी अध्यापक ऐसा नहीं था जो उनकी श्रेष्ठता के जरा भी निकट होता। इलाहाबाद पांडित्य की परंपरा के बावजूद भौतिकी में स्नातकोत्तर अध्यापन एवं अनुसंधान के लिए अभी तैयार नहीं था। उत्तर भारत के सभी कोनों से तीव्रबुद्धि विद्यार्थी इलाहाबाद में उमड़ पड़े और विश्वविद्यालय के अधिकारी तथा जनता के नेता अपने विश्वविद्यालय को फलते-फूलते देखने को उत्सुक थे, यद्यपि सब बातें बहुत आसान नहीं थीं।

उदाहरणार्थ, भौतिकी की प्रयोगशाला बी.एससी. के छात्रों के लिए तो सुसज्जित थी, पर उच्चस्तरीय अनुसंधान के लिए उपस्कर वहां थे ही नहीं। कार्यशाला में बिजली नहीं थी। पुस्तकालय को आधुनिक बनाने की अतीव आवश्यकता थी। साहा जब कोषाध्यक्ष के पास गए तो उसने सहज भाव से कहा, "आपने पुस्तकालय की सब पुस्तकें पढ़ ली हैं। यदि नहीं पढ़ी हैं तब और अधिक की मांग समय से बहुत पूर्व है।"

इलाहाबाद में साहा के जीवन के प्रथम कुछ वर्ष विभाग के पुनर्गठन तथा व्याख्यानों एवं कक्षाओं के प्रयोगों की तैयारी में लगे। धीरे धीरे उन्होंने ऐसे प्रतिभाशाली छात्रों का एक समूह संगठित किया जिन्हें वे उदीयमान समझते थे। वे नियमित रूप से स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षाओं में व्याख्यान देते थे। उनके व्याख्यान क्रमबद्ध रूप से तथा सावधानी पूर्वक तैयार किए जाते थे। वे अपने व्याख्यान का कुछ अंश अपनी विशिष्ट स्वच्छ एवं स्पष्ट लिखावट में श्यामपट्ट पर लिख देते। कक्षा के व्याख्यानों में चित्रदर्शी स्लाइडों को दिखाया जाता था और वे बहुधा प्रदर्शन प्रयोगों का उपयोग करते थे। अपने चुने हुए विद्यार्थियों को प्रोत्साहन देने में उन्हें प्रसन्नता होती थी, क्योंकि वे उनमें से प्रत्येक के सर्वश्रेष्ठ गुणों को उभारने का प्रयास करते थे। अनेक तरह से साहा वही कर रहे थे जो उनके मित्र एवं सहपाठी एस.एन. बोस ढाका में कर रहे थे। अर्थात विद्यार्थियों को निखारने का काम और इलाहाबाद ने वास्तव में ऐसे विद्यार्थी बनाए जिन पर देश को गर्व है।

इलाहाबाद में अनुसंधान कार्य को प्रारंभ करना कोई छोटा-मोटा काम नहीं था। शोध का वातावरण जो कलकत्ता विश्वविद्यालय के वायु में ही व्याप्त था यहां था ही नहीं। कार्यशाला, प्रयोगशाला एवं पुस्तकालय में सुधार के सभी आग्रहों के लिए साहा को अधिकारियों का बड़ा प्रतिरोध सहना पड़ा। परंतु साहा हार मानने वाले व्यक्ति नहीं थे। उनके प्रथम सहकर्मी श्री एन.के. सूर थे जो इविंग क्रिश्चियन कालेज में पूर्णकालिक प्राध्यापक थे और विश्वविद्यालय में अल्पकालिक। उनके

साथ मिलकर साहा ने तापिक आयनन की प्रायोगिक पुष्टि के लिए उपस्कर लगाने की कोशिश की। इलाहाबाद में अध्यापन कार्य का भार इतना अधिक था कि नियमित सत्र की अवधि में किसी और काम के लिए समय नहीं मिलता था। यह सब ग्रीष्मावकाश में ही किया जा सकता था जब ताप 47°C पर पहुंच जाता था और देश जलती हुई भट्टी के समान हो जाता। साहा के सहयोगी एन.के. सूर, पी. के. किचलू, डी.एस. कोट ़ी और उनके सबसे पहले के अनुसंधान छात्र के. मजुमदार गर्मी को सहकर कार्य क ़ते रहे। अतिशीघ्र साहा और उनके छात्रों के अनुसंधान लेख प्रकाशित होने शुरू ़ो गए और भौतिकी विभाग में नवजीवन और उत्साह का स्पंदन होने लगा। किसी प्रादेशिक शहर में रहने से उत्पन्न सामान्य असुविधा तो थी ही जिसके कारण साहा तथा उनके सहयोगियों को जटिल स्पेक्ट्रमों के उद्भव की भौतिक व्याख्या का श्रेय मिलने मे जरा सी चूक हो गई। इलाहाबाद के परिणामों को प्रकाशन के लिए भेजने के पूर्व ही एफ. हुण्ड ने ऐसे स्पेक्ट्रम पर प्राप्त अपने फल प्रकाशित कर दिए थे।

साहा ने 1926 में इंडियन साइंस कांग्रेस की भौतिकी एवं गणित की बैठकों की अध्यक्षता की। उसके बाद के वर्ष 1927 में वे रायल सोसाइटी, लंदन के फेलो चुन लिए गए। उसी वर्ष इटली की सरकार ने उन्हें वोल्टा के शताब्दी समारोह में आमंत्रित किया। रायल सोसाइटी की बैठक में भाग लेने के लिए लंदन के रास्ते में से वोल्टा शताब्दी सम्मेलन में भाग लेने के लिए इटली में लेक कोमो गए। यह विश्व के भौतिकीविदों तथा वैद्युत तकनीशियनों का अपूर्व सम्मेलन था जो इटालवी वैज्ञानिक वोल्टा के सम्मान मे आयोजित छह सप्ताह लंबी बैठक के लिए बुलाया गया था। रूस समेत यूरोप के सभी देशों ने अपने प्रतिनिधि भेजे थे। साहा ने बंग्ला पत्रिका प्रवासी (1952) को लिखी एक लंबी रिपोर्ट में बल्कान राज्यों के प्रतिनिधियों की अनुपस्थिति की चर्चा की। यहां संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा तथा जापान के वैज्ञानिक उपस्थित थे। भारत के अन्य प्रतिनिधि थे : कलकत्ता से डाक्टर एवं श्रीमती डी.एम. बोस और अनिल कुमार दास, जो छात्र प्रतिनिधि के रूप में आए थे। मुसोलिनी ने प्रतिनिधियों को चाय की दावत दी। लेखों के पढ़ने तथा विचार-विमर्श के अतिरिक्त प्रतिनिधियों को इटली के ऐतिहासिक स्थानों का पर्यटन कराया गया।

लंदन से लौटते हुए साहा नार्वे स्थित रिंगैब (62°H) जाने वाले पूर्ण सूर्य ग्रहण अभियान दल में शामिल हो गए। दल का नेतृत्व ओसलो विश्वविद्यालय के प्रोफेसर एल. वेगार्ड कर रहे थे। साहा ने सौर ग्रहण अभियान का वर्णन एक बंग्ला पत्रिका में लिखा जो अब तक जनप्रिय वैज्ञानिक लेखन का नमूना माना जाता है। इस यात्रा में वे बर्लिन तथा कोपेनहेगेन भी गए। उस समय बार्कले के ई. ओ. लारेंस कोपेनहेगेन की यात्रा पर थे। बाद में साहा ने बी.डी. नाग चौधरी को उनके

पास साइक्लोट्रान पर काम करने के लिए भेजा।

साहा के रायल सोसाइटी के फेलो बनने के पश्चात अनुसंधान के लिए आर्थिक आलंब की समस्या आंशिक रूप से सुलझ गई। उत्तर प्रदेश के गवर्नर सर विलियम मारिस ने साहा को बधाई दी और व्यक्तिगत प्रशंसा के चिह्न स्वरूप 5000 रुपए वार्षिक अनुसंधान अनुदान की व्यवस्था कर दी। इतने रुपयों के अनुदान का इन दिनों अधिक महत्व नहीं परंतु 1927 में इसे यथोचित अधिदान समझा जाता था।

इलाहाबाद में साहा तापिक आयनन एवं खगोल भौतिकी पर काम करते रहे। उन्होंने भौतिकी की अनेक अन्य शाखाओ में अनुसंधान की पहल और संगठन किया, यथा : सांख्यिकीय यांत्रिकी, परमाण्विक और आण्विक स्पेक्ट्रमिकी, वैद्युत ऋणात्मक तत्वों की इलेक्ट्रान युयुक्षा, नाइट्रोजन का सक्रिय आपरिवर्तन, अणुओं का उच्चतापीय वियोजन, अयनमंडल में रेडियो तरंगों का प्रसारण तथा उपरिवायुमंडल की भौतिकी। अनुसंधान के कार्यक्रमों का बंटवारा सिद्धांत तथा प्रयोग में सराहनीय रूप से संतुलित था। जिन विद्यार्थियों ने उनके साथ सम्मिलित या स्वतंत्र रूप से काम किया और अनुसंधान लेख प्रकाशित किए उनमें निम्न तेजस्वी व्यक्ति हैं :—आर.के. सूर, जी.आर. टोशनीवाल, आर.सी. मजुमदार, आत्माराम, टी. भार्गव, एस.सी. देव, ए.के. दत्त, आर.सी. शर्मा, जे.वी. मुकर्जी, एल.एस. माथुर, ए.एन.टंडन, आर.एन. राय, के.बी. माथुर, एन.के. साहा, जी.एस. दुबे, बी.एन. श्रीवास्तव, एस. मसलेकर, बी.डी. नाग चौधरी तथा के.आर. साहा। इनमें से लगभग सभी ने किसी न किसी क्षेत्र में उच्चतम स्थान प्राप्त किया है।

यद्यपि साहा अनुसंधान तथा अन्य कार्यो में संलग्न रहे, जिनका उल्लेख आने वाले पृष्ठों में किया गया है, परंतु स्नातकोत्तर एवं स्नातक कक्षाओं को पढ़ाने में उनकी रुचि में कभी कमी नहीं हुई। विद्यार्थियों की कक्षाओं मे ऊष्मा, द्रव्य में अणुगति सिद्धांत तथा सांख्यिकीय यांत्रिकी पर दिए गए उनके व्याख्यानों की प्रशाखा रूप में टेक्स्ट बुक आव हीट (ऊष्मा की पाठ्य पुस्तक) का प्रकाशन था जो बी.एन. श्रीवास्तव के साथ मिलकर 1931 में लिखी गई थी। प्रस्तावना में लेखकों ने स्नातक विद्यार्थियों द्वारा दी गई सहायता स्वीकार की है। प्राक्कथन में सर सी.वी रामन ने लिखा, "ऊष्मागतिकी तथा भौतिक एवं रासायनिक सिद्धांतों में इसके अनुप्रयोग के साथ सुपरिचय, जिसने प्रोफेसर साहा को इन क्लासिकी अनुसंधानों की ओर अग्रसर किया, उसी ने उनको इस विषय का अत्यंत सफल प्रतिपादक भी बनाया है। व्याख्यानशाला तथा प्रयोगशाला में क्रमशः कलकत्ता और इलाहाबाद में उनका अनुभव एक कनिष्ठ लेखक के साथ मिलकर एक ऐसी किताब लिखने में सहायक हुआ है जिसमें विचारों की ताजगी एवं दृष्टिकोण की व्यापकता का मिश्रण सविवरण व्याख्या में स्पष्टतः एवं यथार्थता के साथ हुआ है। ऊष्मा के

सिद्धांत पर एक सुव्यवस्थित तथा आधुनिक ग्रंथ रचने का परिश्रम साध्य कार्य हाथ में लेकर प्रोफेसर साहा ने भारत के अंदर तथा बाहर के विस्तृत पाठकवृंद की कृतज्ञता प्राप्त करने का श्रेय अर्जित किया है। निश्चित रूप से आशा की जाती है कि वह इस पुस्तक को पढ़ेंगे और इसके गुणों की सराहना करेंगे।" पुस्तक द्वितीय परिवर्धित संस्करण में "ट्रीटाइज आव हीट"–ऊष्मा पर प्रबंध ग्रंथ–के नाम से 1936 में पुनः मुद्रित हुई। बाद के सभी संस्करणों में इसका आधुनिकीकरण किया गया है और यह भी लोकप्रिय है। आर्नल्ड समरफिल्ड[15] ने अपनी ऊष्मागतिकी पर लिखित पुस्तक में इस कथन को कि "दो तंत्रों या एक ही तंत्र के दो भागों में ऊष्मीय संतुलन के लिए ताप का बराबर होना आवश्यक शर्त है" ऊष्मागतिकी के शून्य नियम की संज्ञा दी है। इस नाम का प्रस्ताव आर.एच. फाउलर ने दिया था जब वे एम.एन. साहा की ऊष्मागतिकी पर लिखित पुस्तक की समालोचना कर रहे थे।

विज्ञान स्नातकों के लिए इसका एक संक्षिप्त संस्करण "ऊष्मा की पाठ्य पुस्तक–टेक्स्ट बुक आव हीट"–के नाम से प्रकाशित हुआ। इसकी लोकप्रियता इस बात से आंकी जा सकती है कि इसका सत्रहवां संस्करण 1967 में प्रकाशित हुआ।

पटना विश्वविद्यालय के निमंत्रण पर साहा ने परमाणु भौतिकी पर एक व्याख्यान माला दी। अपनी विशिष्ट शैली मे उन्होंने व्याख्यान की टिप्पणियों को संशोधित कर "परमाणु भौतिकी पर छह व्याख्यान" के नाम से एक विनिबंध के रूप में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से 1931 में प्रकाशित किया। ये "मेघनाद साहा के संकलित लेख, खंड-1" में पुनः मुद्रित हुए हैं। एन.के. साहा के साथ लिखित एक अन्य पुस्तक "आधुनिक भौतिकी का प्रबध ग्रंथ–ट्रीटाइज आफ माडर्न फिजिक्स" (इंडियन प्रेस इलाहाबाद, 1953) बहुत प्रभावशाली नही साबित हुई और इसका कभी संशोधन नहीं किया गया।

1930 तक भौतिकी विभाग के अनुसधान कार्यक्रम पूरी गति में आ गए थे और पूरे भारत के विद्वानों को आकर्षित करने लगे थे। सब मिलाकर विद्वता के स्तर में भी काफी सुधार दिखाई पड़ने लगा। चूंकि साहा स्नातक कक्षाओं को नियमित रूप से पढ़ाते थे वे बहुत से विद्यार्थियों के संपर्क में आते और उन्हें उत्साहित करते थे। परंतु सभी विद्यार्थी अनुसंधान करने योग्य नहीं साबित होते थे। साहा को यह परखने में देर नहीं लगती थी कि किस में संधृत कार्य करने की क्षमता थी और किसमें नहीं। उनके अनेक विद्यार्थी प्रतियोगिता परीक्षाओं में अच्छे निकले। परंतु उन्होंने डी.एस. कोठारी को ऐसी परीक्षा में बैठने के विरुद्ध सलाह दी। कोठारी परीक्षा में बैठने के बजाय यूरोप गए और खगोल भौतिकी में श्रेष्ठ काम किया जो अब खगोल भौतिकी के ज्ञान का अभिन्न अंग बन गया है।

इलाहाबाद उच्च न्यायलय के प्रधान न्यायाधीश सर शाह मुहम्मद सुलेमान साहा के अच्छे मित्रों में थे। अपनी युवावस्था के प्रारंभिक दिनों में न्यायाधीश की विज्ञान के प्रति रुचि जागृत हो गई और वे अपने सभी न्यायिक कार्यो के बावजूद इसके संपर्क में रहना चाहते थे। उन्होंने प्रोफेसर साहा से निवेदन किया कि वे एक ऐसा विद्यार्थी बताएं जो उन्हें आधुनिक भौतिकी की अद्यतन प्रगति को बता सके। प्रोफेसर साहा ने सुलेमान के बुद्धिजीवी साथी के रूप में कोठारी को चुना। सुलेमान ने इसका अनुमोदन किया। उन्होंने अपने आचार के विपरीत दिल्ली विश्वविद्यालय के अधिकारियों से कोठारी की प्रशंसा की कि वह सक्षम युवक था और उसने अपने विद्वान एवं अनुसंधानकर्ता होने की ख्याति पहले ही स्थापित कर ली है।

एक समय था जब साहा के पढ़ाए हुए विद्यार्थी रेलवे, असैनिक सेवाओं, पुलिस सेवा, मौसम विज्ञान विभाग तथा अन्य मंत्रालयों में नियुक्त थे। विद्यार्थियों के वृत्तिक के चुनाव के बारे में उनकी सहज प्रवृत्ति अद्‌भुत थी। ज्ञान मुकर्जी, जो अपनी कक्षा के श्रेष्ठ विद्यार्थियों में से था, सिविल सेवा की परीक्षा में सफल न हो सका। उसमें अनुसंधान की अभिक्षमता भी न थी। पर विज्ञान के अन्य छात्रों के विपरीत लड़के की रुचि अनेकानेक विविधतापूर्ण बातों में थी। साहा ने उसे 'साइंस एंड कल्चर' पत्रिका के सहायक संपादक का काम करने को कहा। इस पत्रिका की पहले की अधिकांश सफलता का श्रेय ज्ञान मुकर्जी की साहित्यिक योग्यता को है। साहा द्वारा प्रोत्साहन पाकर ज्ञान मुकर्जी बाद में फिल्म उद्योग में चले गए और फिल्म निर्देशक के रूप में नाम कमाया। साहा कभी भी चलचित्र देखने नहीं जाते थे पर ज्ञान मुकर्जी के निमंत्रण पर उसकी फिल्मों का मुहुर्त करने से कभी ने चूकते।

उनके विद्यार्थी बहुधा अपने वृत्तिक के चुनाव में उनसे परामर्श करते थे क्योंकि वे साहा की राय का सम्मान करते थे और उनको सर्वोत्तम निर्णायक समझते थे। एक ऐसे ही छात्र आत्माचरण ने प्रायोगिक कक्षाओं में आना बंद कर दिया था। कारण पूछने पर छात्र ने उत्तर दिया कि वह सिविल सेवा परीक्षा की तैयारी कर रहा था और उसके पास समय का अभाव था। साहा ने क्रुद्ध होने की बजाय उससे कहा, "मैं चाहता हूं कि तुम सारा समय अपनी तैयारी में लगाओ। इसलिए तुम अपना नाम छात्र सूची से वापस ले लो।" आत्माचरण ने उनकी राय मान ली और सफल हो गया। बाद में, महात्मा गांधी हत्याकांड की जांच के लिए स्थापित अधिकरण के एक न्यायाधीश के रूप में उसने ख्याति अर्जित की।

साहा के अनेक पुराने छात्र, जिनमें स्नातक भी सम्मिलित थे, उनसे सदा संपर्क बनाए रखते थे। अपनी ओर से वे उनके वृत्तिक में बड़ी रुचि दिखाते। उनके छात्र उनके प्रति बहुत सम्मान दिखाते थे। एक बार 1945 के ग्रीष्म में जब वे रूस की विज्ञान अकादमी की 200वीं वर्षगांठ के अवसर पर भारतीय प्रतिनिधि

के रूप में रूस जाने की योजना बना रहे थे तो उन्हें ईरान का वीजा लेना था जो उन्हें कराची स्थित ईरान के वाणिज्य दूत से प्राप्त होता। उनके एक पुराने छात्र मणीन्द्र नाथ चक्रवर्ती ने, जो उस समय कराची बंदरगाह में रेल यातायात का प्रभारी अधिकारी था, स्थिति को पूरी तरह सम्हाल लिया और सभी पत्रों को बिना विलंब निकलवा दिया। यह वही चक्रवर्ती था जिसे भाभा ने तारापुर के परमाणु विद्युत संयंत्र को लगाने के लिए चुना।

इलाहाबाद में साहा के रहने का स्थान उनके छात्रों के लिए खुलागृह था। जब वे पहले इलाहाबाद में आए तो उन्होंने जार्ज टाउन में एक घर किराए पर लिया। बाद में उन्होंने 7 बेली रोड पर अपना घर बनवाया जिसका नाम 'साइंस विला' था। घर इतना बड़ा था कि जब साहा के कलकत्ता के परिचित एडवोकेट गोपाल दास उनसे प्रथम बार मिलने गए तो उन्हें स्वयं अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। किचलू, कोठारी तथा आर.सी. मजूमदार और अन्य कितने ही उनके अनुसंधानकर्मी कभी न कभी उनके यहां ठहरे थे। अपने संस्मरणों में एन.के. साहा ने लिखा[20] है : यद्यपि मैं बिलकुल अपरिचित था फिर भी एक भावना भरे क्षण में मैंने साहा को एक पत्र लिखा कि मैं इलाहाबाद जाने तथा उनके तत्वावधान में एक विनीत अनुसंधान छात्र की तरह काम करने के लिए अत्यंत व्यग्र था। उत्तर तुरंत आया—मेरे जीवन की एक बिल्कुल अप्रत्याशित घटना। पत्र लंबा था और साफ एवं स्पष्ट अक्षरों में लिखा गया था। इसमें उन्होंने लिखा था कि अपने देश में अनुसंधान वृत्तिक कठिनाइयों से भरा हुआ है। और अपेक्षाकृत रूखे शब्दों में कहा कि मैं गर्व की भावना या आदर्श का इंद्रजाल जिसे मैंने अनुसंधान वृत्तिक के संबंध में अपने मन में पाला है उसे छोड दूं। उन्होंने किसी अनुसंधान छात्रवृत्ति की आशा नहीं दिलाई पर यदि मैं अपने को योग्य साबित कर सका तो यथोचित सहायता दिलाने का वायदा किया। मेरे संवेदनशील युवा मन को ऐसा लगा कि पत्र का बाह्य कठोर होने पर भी उसमें सदाशयता एवं सहानुभूति की हल्की भावना थी। अपने मित्रों द्वारा प्रोत्साहन पाकर मैंने इलाहाबाद जाने का निश्चय किया। लगभग एक सप्ताह बाद एक संध्या को अपने थोड़े से सामान के साथ मैं नं. 7 बेली रोड पर पहुंच गया। मेघनाद साहा अपने घर के सामने के मैदान में बैठकर पढ़ रहे थे। वे जल्दी ही मुझे पहचान गए, स्वागत में कुछ कोमल शब्द कहे और सरलतापूर्वक कहा कि मैं उनकी निचली मंजिल के एक कमरे में ठहरूं और आराम से रहूं। दूसरे दिन प्रातः चाय की मेज पर उन्होंने मेरी पढ़ाई के बारे में कुछ प्रश्न पूछे और भौतिकी संबंधी मेरे ज्ञान का अनुमान लगाने की कोशिश की। उन्होंने तुरंत मेरे दैनिक कार्य का प्रोग्राम बना दिया जो स्थूल रूप से इस प्रकार था : (1) परमाण्विक एवं आण्विक स्पेक्ट्रमिकी पर उनकी मेज पर रखे कुछ मानक ग्रंथों और इस विषय पर उनके हाल में प्रकाशित कुछ लेखों को पढ़ना, (2) कुछ अनुसंधान

समूहों को उनके प्रयोगशाला के कार्य में सहायता करना, (३) नियमित अवधि के बाद अपने अध्ययन एवं निरीक्षण को लिखना और उन्हें दिखाना।

कुछ सप्ताह तक यह सब मैंने निष्ठापूर्वक किया। वे मेरी टिप्पणियों को सरसरी दृष्टि से ही देखते, शायद ही कभी कुछ टिप्पणी करते, परंतु अंत में मेरे भविष्य के बारे में अपनी योजना से संतुष्ट जान पड़े। लगभग छह महीने इलाहाबाद में मेरे ठहरने के बाद एक दिन जब मैं प्रयोगशाला में कुछ वरिष्ठ छात्रों के साथ उनका विचार-विमर्श सुन रहा था तब उसके अंत में मुझ से बात की। इन्होंने कुछ जैविक हैलाइडों के सतत–अवशोषण स्पेक्ट्रम के तुलनात्मक अध्ययन से संबंधित एक समस्या बताई और कहा कि मैं अपना उपस्कर प्रयोगशाला के एक कोने में दूसरों के काम में बिना विघ्न डाले स्थापित करूं।

तीसरे दशक में बी.डी. नाग चौधरी छात्र थे। पुलिस ने स्वतंत्रता संग्राम में उपद्रवी होने के शक में उनके छात्रावास के कमरे की तलाशी ली और कुछ दिनों के लिए उन्हें हिरासत में ले लिया। यह खबर जैसे ही साहा तक पहुंची उन्होंने नाग चौधरी को लेने के लिए अपनी कार भेजी और आज्ञा दी कि वे तुरंत उनके घर चले आएं। नाग चौधरी को झुंझलाए हुए साहा के सामने आना पड़ा। उन्होंने समझाया कि हलचल करने से नहीं वरन काम के प्रति निष्ठा रखने से ही देश को गौरवान्वित किया जा सकता है। तीन महीने तक साहा के घर में नाग चौधरी बंदी के समान रहे।

1928-38 तक की अवधि साहा के लिए व्यस्तता का काल था। वे अपने रचनात्मक काल के शीर्ष पर थे, और उनके कार्यक्षेत्र का विस्तार होता जा रहा था। अनुसंधान के कार्यक्रम अब नियंत्रण में थे। जब कभी किसी छात्र में विचार की स्वतंत्रता और स्वयं अनुसंधान करते रहने की क्षमता दिखाई पड़ती, साहा उसे अपने ही मार्ग पर चलने के लिए प्रोत्साहित करते। इस प्रकार पी.के. किचलू, डी. एस. कोठारी तथा आर.सी. मजुमदार ने स्वतंत्र रास्ता या अनुसंधान अपनाया। भौतिकी जगत में, जहां नई नई संकल्पनाओं और विचारों का प्रतिपादन हो रहा था, इलाहाबाद वर्ग अद्यतन घटनाओं से अपने को परिचित रखता और नियमित रूप से विचार विमर्श करता। सहयोगी, वरिष्ठ शोध छात्र, नवीन अनुसंधान छात्र यहां तक कि एम. एससी. के विद्यार्थी भी सौर किरीट के स्पेक्ट्रम पर, या बीटा क्षयण, या वर्जित रेखाओं अथवा अकार्बनिक लवणों के रंगों पर हुए विचार-विमर्श में भाग ले सकते थे। प्रयोगशाला में वर्तमान उत्कंठा तथा उत्साह के वातावरण का अनुमान एन.के. साहा के संस्मरणों[21] से लिए गए निम्नलिखित उद्धरण से लगाया जा सकता है :

''इन्हीं दिनों के आस-पास (संभवतः नवंबर 1934 के आस-पास) कलकत्ता विश्वविद्यालय ने प्रोफेसर साहा से किसी सामयिक विषय पर एक विशिष्ट स्मारक

व्याख्यान माला देने का निवेदन किया। उन्होंने अपने व्याख्यान का विषय न्यूट्रान को चुना—नव अन्वेषित मूल न्यूक्लीय कण बोए (1930) जिसकी पहचान अंततः चैडविक ने कैवेंडिश प्रयोगशाला में स्थापित की (1932)। ठीक उसी समय एन्रिको फर्मी और उसके समूह द्वारा रोम में मंदगति न्यूट्रान से तत्वों के वरणात्मक सक्रियण पर प्रखर लेख प्रकाशित किए गए। मुझे अब तक स्पष्ट रूप से याद है कि कैसे एक दिन संध्या समय प्रोफेसर साहा फर्मी के अद्यतन लेख को हाथ में लिए घर आए जो रायल सोसाइटी की कार्रवाई में छपा था। वे बड़े जोश के साथ सारे विकास के संबंध में बात करने लगे और भविष्य के न्यूक्लीय सिद्धांत पर इसके प्रभाव की संभावनाओं की प्रागुक्ति की। उनके मस्तिष्क में न्यूट्रान तथा उसके गुणधर्म सबंधी विचार भरे थे और अपने कलकत्ता विश्वविद्यालय के व्याख्यान के लिए उन्होंने इसी विषय को चुना। आगामी कई दिनों तक हम लोगों ने एक साथ बैठकर इस विषय से सबंधित सभी लेखों का गहराई से अध्ययन किया और उन पर विचार-विमर्श किया तथा तुरंत व्याख्यान का प्रारूप तैयार कर दिया। उस समय हम लोगों को यह नहीं मालूम था कि यह घटना भविष्य में मेघनाद साहा की और मेरी भी अनुसंधान रुचि में मोड़ सिद्ध होगी।''

यह बात बड़ी रोचक है कि प्रोफेसर साहा ने फरवरी 1936 को इंडियन फिजिकल सोसाइटी को प्रस्तुत ''न्यूट्रानों तथा प्रोटानों में द्रव्यमान का उद्‌भव'' विषयक एक लेख में मौलिक सिद्धांतों से चुंबकीय एक ध्रुव के ध्रुव प्राबल्य की गणना करने की एक विधि का वर्णन किया था। यह लेख इंडियन जर्नल आफ फिजिक्स जिल्द 1 पृष्ठ 141, 1936 में प्रकाशित हुआ। इसके पूर्व 1931 में पी. ए.एम. डिराक ने क्वांटम यांत्रिकी के अनुसार एक ध्रुवों के विद्यमान होने की घोषणा की थी जिनमें से प्रत्येक का प्राबल्य $\frac{\varepsilon}{2\alpha}$ होना चाहिए। उन दिनों चुंबकीय ध्रुव शैक्षिक रुचि की बातों में से थे और सैद्धांतिक भौतिकीविदों में प्रचलित प्राकल्पित धारणाओं में एक थे। मूल कणों तथा उच्च ऊर्जा भौतिकी के ज्ञान में वृद्धि के बावजूद इन बहुचर्चित एक ध्रुवों की पहचान नहीं की जा सकी है। परंतु सबंधित सूत्र को डिराक-साहा सूत्र कहा जाता है।

साहा के अपने ही शब्दों में 1930 आते आते उन्होंने अपने अनुसंधान एवं प्रयोगशालाओं के स्थल से बाहर आने का निश्चय किया। यह निर्विवाद है कि साहा अनेक तरह से समय से आगे थे, विशेषकर जहां तक विज्ञान की उन्नति के साथ समाजिक आवश्यकताओं में ताल-मेल बनाए रखने की बात थी। अब गुणी नौसिखिया का जमाना लद चुका था और समन्वय तथा संप्रेषण पर बल दिया जा रहा था। भारत के समान विस्तार वाले देश में अकेले ही काम करने वाले एकल वैज्ञानिक को वैज्ञानिक अनुसंधान की मुख्यधारा में लाना आवश्यक था। समय का तकाजा था कि वैज्ञानिक विचारों के आदान-प्रदान के लिए एक सह मिलन स्थल की खोज करें।

1930 में इंडियन साइंस कांग्रेस एसोसिएशन की इलाहाबाद में हुई बैठक में सारे उत्तर प्रदेश के वैज्ञानिक विचारों के आदान-प्रदान के लिए एकत्र हुए। उत्तर प्रदेश के राज्यपाल सर मेल्काम हेली ने, जो मुख्य संरक्षक थे, इस प्रकार वक्तव्य[22] दिया—

"अब मैं इस बात से भलीभांति अवगत हूं कि जिस हद तक हमारे अनुसंधान-कर्ताओं का छात्रों को इन समस्याओं (आर्थिक एवं उपयोगिता संबंधी) की ओर निर्देशित किया जा सकता है, उसकी निश्चित सीमाएं हैं। मैं इस बात को भी अच्छी तरह मानता हूं कि बाहर से उनके प्रयासों के समन्वयन के लिए निर्देश नहीं दिए जा सकते। यह प्रयास स्वेच्छानुसार किया जा सकता है या अधिक से अधिक किसी विज्ञान अकादमी के परामर्श से हो सकता है। इस अकादमी में प्रदेश में किए जाने वाले वैज्ञानिक कार्यो की सभी विशिष्ट शाखाओं के मान्य प्रतिनिधि होने चाहिए। परंतु यदि किसी रूप में प्रकट समन्वयन किया जा सके और यदि जन साधारण के समक्ष यह साबित किया जा सके कि विज्ञानकर्मी कम से कम अपनी कुछ शक्ति का उपयोग उस ओर कर रहे हैं जिसका मैंने प्रस्ताव किया है, तब मेरा विश्वास है कि उस सार्वजनिक सहायता एवं निजी उदारता के लिए हमारे पास बहुत अधिक प्रभावशाली कारण होगा जिस पर वैज्ञानिक कार्य की आगे की प्रगति निर्भर है।"

इस उत्साहवर्धक भाषण का तुरंत यह फल हुआ कि उत्तर प्रदेश के वैज्ञानिकों की एक समिति बन गई जो बाद में बढ़कर वैज्ञानिकों के सम्मेलन में परिणित हो गई। इस समिति के एक सदस्य के रूप में प्रोफेसर साहा ने उसके उद्देश्यों, नियमों एवं विनियमों को बनाने में प्रमुख भाग लिया। ये सब रायल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल के माडल पर बने थे।

1930 में इलाहाबाद में गठित उत्तर प्रदेश विज्ञान अकादमी के लिए प्रोफेसर साहा के निवेदन पर गवर्नर ने 4000 रुपए प्रतिवर्ष का अनुदान स्वीकृत किया। प्रोफेसर साहा सर्वसम्मति से अकादमी के प्रथम अध्यक्ष बनाए गए।

इस समय तक साहा को बिखरी हुई वैज्ञानिक शक्ति को संगठित करने और वैज्ञानिक विकास से संबंधित विषयों में उनके स्तर एवं कथन को स्थान दिलाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। अकादमी का उद्देश्य विचारों का बुद्धिमत्तापूर्ण विनिमय मात्र नहीं था बल्कि देश की अनेक आर्थिक कठिनाइयों के निराकरण के लिए विज्ञान एवं तकनीक के प्रयोग का प्रयास भी था। इस प्रकार पहली बार भारतीय वैज्ञानिक राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान में अपनी राष्ट्रीय भूमिका से अवगत हुए। साहा का मस्तिष्क धीरे धीरे किस दिशा की ओर जा रहा था, इसे समझा जा सकता है। यद्यपि यह प्रथम चरण था फिर भी इससे झुकाव काफी स्पष्ट हो जाता था। उनके 1932 के अध्यक्षीय भाषण के उद्धरण से यह प्रकट हो जाता है कि विज्ञान

के सामाजिक कर्तव्य के बारे में उनमें कितनी प्रबल भावना थी। "अनेक विचारवान पुरुषों को प्रतीत होता है कि आधुनिक युग की अनेक बुराइयों का कारण मानव समुदाय का संसार की बदलती हुई अवस्थाओं से असमंजन है। समाचार के उन्नत साधनों और विभिन्न भागों के बीच अधिक अच्छे संपर्क के कारण संसार आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से शीघ्रतापूर्वक एक इकाई बनता जा रहा है। परंतु राजनीतिज्ञ अब भी अपनी श्रेष्ठता की भावना में जकड़े हुए हैं।

"विश्व महायुद्ध के पहले राजनीतिज्ञ उस स्थिति में थे जिसमें भौतिकविद अपने को आर्किमीडिज के पहले या नोमर अथवा हेसायड के समय में अपने को पाते थे। उसका देश ही उसका ओलिम्पस था, उसके अपने ही देशवासी उसके देवता थे, अन्य सभी राक्षस थे, जंगली थे जिन्हें तलवार के घाट उतार दिया जाना चाहिए था या दासों की भांति उनका शोषण किया जाना चाहिए था। महायुद्ध तथा उसके पहले सभी युद्ध इसी मनोवृत्ति के परिणाम स्वरूप थे। परंतु महायुद्ध पहले के सभी युद्धों से विनाश एवं विध्वंस की गंभीरता में बढ़कर था क्योंकि विज्ञान ने मानव के हाथ में अधिक शक्ति सौंप दी थी। लेकिन इसने एक महान कार्य भी किया। इसने अंतर्राष्ट्रीय झगड़ों की मूर्खता स्पष्ट कर दी। जब दिवंगत एम. क्लिमेंस्यू मिस्र की यात्रा पर गए और पिरामिड देखने के लिए ले जाया गया तो उन्होंने अपेक्षाकृत व्यंग्यपूर्वक मिस्र के फेरों के वृथा अभिमान पर टिप्पणी की जिन्होंने अपने 'का' (आत्मा) के रहने के लिए दासों के श्रम से पत्थर के विशाल स्मारक बनाए। उन्हें काहिरा के एक समाचार पत्र ने याद दिलाया कि यदि बड़े पिरामिड के निर्माणकर्ता चेआप्स की आत्मा अपने पत्थर के मकबरे में मुक्ति पा जाती तो उसने प्रत्युत्तर दिया होता कि वार्साई की संधि तथा लड़ाकू जहाजों और सैनिक आयुधों पर खर्च और देश के उत्कृष्ट युवकों की राष्ट्रीयता की रक्तरंजित वेदी पर बलि कहीं अधिक मूर्खता थी। इसलिए कि यदि युद्ध पर व्यर्थ खर्च किए गए धन का दशमांश भी प्राकृतिक साधनों के आंतरिक विकास पर खर्च किया जाता तो प्रत्येक युद्धरत देश को उससे अधिक सुरक्षा तथा समृद्धि प्राप्त होती जितनी राजनीतिज्ञ अपने विचित्र उपायों से पाने की कभी कल्पना कर सकते हैं।"

शीघ्र ही अकादमी की सदस्यता अवध और आगरा के संयुक्त प्रदेश की भौगोलिक सीमा को पार कर दूर दूर तक फैल गई। 1934 में उत्तर प्रदेश अकादमी का दुबारा नाम विज्ञान की राष्ट्रीय अकादमी रखा गया। चार वर्ष बाद अकादमी ने विद्युत शक्ति पर परिचर्चा आयोजित की और पंडित नेहरू से इस समारोह की अध्यक्षता स्वीकार करने के लिए कहा। नेहरू ने वैज्ञानिकों से कहा कि वे सरकार को दिए जाने वाले अपने प्रस्तावों को अधिक यथार्थ बनाएं। उन्होंने अकादमी से कहा कि वह शक्ति के उत्पादन के सुनिश्चित प्रस्ताव बनाए। "हम लोगों को जनमत विकसित करना पड़ेगा और सरकार पर दबाव डालना होगा।" राष्ट्रीय

अकादमी ने अपनी स्वर्ण जयंती 1980 में मनाई और अपने संस्थापक को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

साहा अकादमी के क्षेत्रीय रूप से संतुष्ट नहीं थे। वास्तव में अकादमी के क्रियाकलाप रायल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल तथा इंडियन साइंस कांग्रेस एसोसिएशन की भांति अंशतः स्थानीय और अंशतः राष्ट्रीय स्तर पर थे। साहा एक ऐसी अकादमी को स्थापित करने की धारणा संजो रहे थे। जिसका स्वरूप अखिल भारतीय हो। इंडियन साइंस कांग्रेस की 1934 में बंबई में हुई 21वीं बैठक में साहा का प्रधान अध्यक्षीय भाषण दो भागों में बंटा था। प्रथम भाग में मौलिक ब्रह्मांडीय समस्याओं का समावेश था जबकि दूसरे भाग में इंडियन अकादमी आफ साइंस (भारतीय विज्ञान अकादमी) के गठन और नदी भौतिकी प्रयोगशाला स्थापित करने की चर्चा थी। अकादमी के उद्देश्यों के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए गए थे–

"अतएव भारतीय अकादमी एक केंद्रीय संस्था होगी। जिसमें विज्ञान की सभी शाखाओं का प्रतिनिधित्व होगा। यदि एक उपमा दी जाए तो इसका स्वरूप इंग्लैंड की रायल सोसाइटी या जर्मनी की प्रशियन अकादमी जैसा होना चाहिए अर्थात इसे विशिष्ट विषयों से संबंधित संस्थाओं के पिरामिड का शीर्ष होना चाहिए। अतः इसकी सदस्ता सीमित होनी चाहिए। इसकी सदस्यता को विशिष्टता एवं सम्मान का सूचक समझा जाना चाहिए। अनेक उत्तरदायित्व पूर्ण कर्तव्यों में जिनमें वैज्ञानिक कार्यो का समावेश हो, अकादमी का सहयोग राज्य के साथ होना चाहिए।

यदि अकादमी ऊपर लिखे अनुसार आरंभ की जाए तो इसे निम्नांकित कार्य अपने हाथ में लेने चाहिए–

(1) यह संयुक्त राज्य अमेरिका की नेशनल एकेडेमी आव साइंसेज की भांति Comptes Rendus या कार्रवाई प्रकाशित करेगी, जिसमें बड़े या छोटे सार के रूप में केवल परिणाम होंगे। इसे सामान्यतया किसी विषय विशेष पर जर्नल नहीं प्रकाशित करना चाहिए। यह कार्य संस्थाओं एवं सेवाओं के ऊपर छोड़ देना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह संस्मरणों और कार्रवाइयों को प्रकाशित कर सकती है।

(2) इसे भारतीय विज्ञान कांग्रेस के संगठन का भार लेना चाहिए।

(3) यह राज्य को राष्ट्रीय अनुसंधान समितियां बनाने के लिए प्रेरित करे, जिसमें अकादमियों का यथेष्ट प्रतिनिधित्व हो।

(4) इसे धन प्राप्त करके उसका तथा वैज्ञानिक अनुसंधान का प्रबंध करना चाहिए।

(5) इसे विज्ञान की विभिन्न शाखाओं की संस्थाओं तथा वैज्ञानिक शोध की प्रांतीय, शैक्षिक, विश्वविद्यालयी सेवाओं तथा निजी संगठनों के बीच संपर्क माध्यम का काम करना चहिए।

(6) इसे राष्ट्रीय कल्याण से संबंधित समस्याओं के बारे में पूछताछ करनी चाहिए और बढ़ावा देना चाहिए।

(7) अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के लिए अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं में इसे भारत का प्रतिनिधित्व करना चाहिए।

साइंस कांग्रेस की उसी बैठक में प्रोफेसर साहा के प्रस्तावों पर विचार करने के लिए एक अकादमी समिति बनाई गई, जिसके अध्यक्ष भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण के निदेशक सर एल.एल. फर्मोर और प्रोफेसर एम.एन. साहा और एस.एल. फर्मोर और प्रोफेसर एम.एन साहा और एस.पी. अगारकर संगठन सचिव नियुक्त किए गए। उपरिलिखित प्रस्तावों के अनुसार भारतीय अकादमी प्रारंभ करने की बात पर बड़ा विवाद खड़ा हो गया। इलाहाबाद में स्थित राष्ट्रीय अकादमी के अतिरिक्त सर सी. वी. रामन ने बंगलौर में इंडियन एकेडेमी आव साइंस को स्थापित कर दिया था। अंत में साहा ने प्रस्तावों के परिणामस्वरूप 1935 में भारतीय विज्ञान के राष्ट्रीय संस्थान (नेशनल इंस्टीट्यूट आफ साइंस आफ इंडिया) की स्थापना सर्वोच्च समन्वयन अकादमी के रूप में की गई। इसे अन्य अकादमियों एवं वैज्ञानिक संस्थाओं के क्रियाकलापों के समन्वयन के लिए अधिकृत सर्वोच्च निकाय समझ कर प्रमुख संस्थान के रूप में केंद्रीय सरकार द्वारा मान्यता प्रदान की गई। सर एल. एल. फर्मोर राष्ट्रीय संस्थान के प्रथम अध्यक्ष और प्रोफेसर एम.एन. साहा एक उपाध्यक्ष चुने गए। यहां ब्रिटेन के वैज्ञानिक सर एल.एल. फर्मोर के दृष्टिकोण की समीक्षा रोचक होगी। इसे उन्होंने 1935 में नेशनल इंस्टीट्यूट आफ साइंसेज आफ इंडिया (भारतीय विज्ञान के राष्ट्रीय संस्थान) के उद्घाटन[28] भाषण के रूप में दिया था।

''अकादमी सार रूप में ऐसा स्थान थी जहां दार्शनिक मिलते और समस्याओं पर विचार विमर्श करते। यह प्रधानतः व्यक्तिगत एवं स्थानीय प्रयोग के लिए यथोचित स्थान था। अतएव पूरे भारत जितने विशाल क्षेत्र में इस कार्य को संपन्न करने के लिए एक अकादमी की स्थापना का प्रयास संभवतः गलत दिशा में कदम होगा जब तक कि शीघ्रतापूर्वक यातायात के साधन पर व्यय इस समय के खर्च की अपेक्षा बहुत कम न हो जाए। इस बात से यह भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सारे भारत में विद्वानों तथा वैज्ञानिकों में परस्पर संपर्क पहले क्षेत्रीय आधार पर ही हो सकता है। अतएव प्रत्येक महत्वपूर्ण क्षेत्र में, जिसमें कुछ मात्रा में अनुसंधान होता है, अपनी अकादमी होनी चाहिए। यदि विज्ञान तथा साहित्य की एक ही अकादमी हो तो अच्छा होगा अन्यथा दोनों के लिए अलग अलग अकादमी हो। वर्तमान काल में इस बात का अनुमान लगाना कठिन है कि भारत जैसे विशाल देश में विज्ञान की कितनी अकादमियां होनी चाहिए। इसका निश्चय तो भारत के विभिन्न भागों में वैज्ञानिक ही अपनी इस बात के निर्णय से कर सकते हैं कि क्या

वे अपनी ही ज्ञान वाटिका में जाना और चर्चा करना पसंद करते हैं या दूर स्थित वाटिकाओं का लेटर-बाक्स एवं मुद्रित पृष्ठ द्वारा उपयोग करना।"

स्पष्टतः इस प्रयास के लिए उचित समय आ गया था। द्रुत संचार के दिन निकट ही थे और वैज्ञानिकों को लेटरबाक्स और मुद्रित पृष्ठ ही अधिक पसंद आया। अकादमी ग्रीस की आनंद वाटिका नहीं रही जहां प्लेटो अपने शिष्यों को उपदेश देता था वरन उससे बहुत आगे बढ़ गई थी।

1937-39 अवधि के लिए प्रोफेसर साहा नेशनल इंस्टीट्यूट आव साइंसेज के द्वितीय अध्यक्ष बने। इसके प्रारंभ से ही वे नियमित रूप से अपने अनुसंधान लेख द्वारा इसमें योगदान देते रहे और अंत तक संस्थान के मामलों में सोत्साह रुचि लेते रहे। नेशनल इंस्टीट्यूट आव साइंसेज का नाम अब इंडियन नेशनल साइंस एकेडेमी (भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी) हो गया है।

यद्यपि साहा इलाहाबाद चले गए थे फिर भी वे अपने को कलकत्ता की घटनाओं से अवगत रखते थे। वहां का सब से पुराना अनुसंधान संस्थान—इंडियन एसोसिएशन फार दि कल्टीवेशन आव साइंसेज बड़ी कठिनाई का सामना कर रहा था। जैसाकि पहले कहा जा चुका है, सर सी.वी. रामन पहले व्यक्ति थे जिन्होंने एसोसिएशन में बहुत पहले 1907 में अनुसंधान कार्य आरंभ किया था। जिस कार्य पर उन्हें 1930 में नोबेल पुरस्कार मिला था वह यहीं पर किया गया था। समय के प्रवाह के साथ सर सी.वी. रामन का श्यामा प्रसाद मुकर्जी समेत सब ट्रस्टियों के साथ संगठन चलाने के बारे में मतभेद हो गया। महापुरुषों की लड़ाई में रामन को हार माननी पड़ी और 1930 में विरुचि के साथ हट जाना पड़ा। श्यामा प्रसाद साहा का समर्थन प्राप्त करने के लिए इलाहाबाद गए थे।

साहा सपष्टतः वैज्ञानिक क्षेत्र में एक शक्तिशाली बल बनते जा रहे थे। इसके कई कारण थे। यह सच है कि रामन अकेले भारतीय वैज्ञानिक थे जिन्हें नोबेल पुरस्कार मिला था परंतु साहा को भी बहुत पहले द्वितीय दशक में ही अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हो गई थी। उन दिनों खगोल भौतिकी में नोबेल पुरस्कार नहीं दिया जाता था, यद्यपि नोबेल समिति से साहा के नाम का प्रस्ताव भेजा गया था। इसके अतिरिक्त जो प्रबल अनुसंधान समूह उन्होंने इलाहाबाद में बनाया था उससे उनको और बल मिला। वह पहले से ही सक्षम सहायकों की फौज तैयार कर रहे थे जो अब अन्य अनुसंधान केंद्रों पर तैनात थे। तीसरी बात थी उनका दृढ़ विश्वास कि विज्ञान द्वारा देश की भलाई हो सकती है। वे अस्पष्ट विचारों वाले नहीं थे—वे निश्चित योजना बनाने और उसे कार्यान्वित करने में विश्वास रखते थे।

उनके अंदर का संगठनकर्ता धीरे धीरे कार्य क्षेत्र बढ़ाता जा रहा था। उनका दूसरा महत्वपूर्ण प्रयास था कलकत्ता में इंडियन साइंस न्यूज एसोसिएशन की स्थापना और 'साइंस एंड कल्चर' पत्रिका को इंग्लैंड की लोकप्रिय पत्रिका 'नेचर'

के माडल पर निकालना। इसके प्रकाशन की तिथि से साहा बराबर अपने विचारों को साइंस एंड कल्चर के स्तंभ द्वारा प्रसारित करते थे। परिशिष्टि-II पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होगा कि हस्ताक्षरयुक्त एवं हस्ताक्षर रहित लेखों और अत्यंत रोचक सम्पादकीयों द्वारा जीवन के अंतिम दिन तक जो योगदान वे करते रहे वह कितना विस्तृत एवं व्यापक था।

1936 में साहा ब्रिटिश साम्राज्य के कारनेमी ट्रस्ट की अध्येतावृति से यूरोप तथा संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रयोगशाओं की विस्तृत यात्रा पर गए। उन्हें न केवल अध्यापन से ही छुट्टी मिली बल्कि पश्चिम की अद्यतन घटनाओं से परिचित होने का अच्छा अवसर भी प्राप्त हुआ। वह अपने ज्येष्ठ पुत्र अजित को, जो स्कूल में पढ़ रहा था, साथ ले गए। यूरोप में अपनी विस्तृत यात्रा के दौरान उन्होंने अजित को स्विट्जरलैंड के एक स्कूल में छोड़ दिया। तब वे जहाज से बसरा आए और स्थल मार्ग से उन्होंने ट्रेन तथा कार द्वारा बगदाद, बेरूत और हैफ़ा की यात्रा की। यह द्वितीय विश्वयुद्ध के कुछ वर्ष पहले की बात है और साहा उसी समय वातावरण में व्याप्त नात्सी अत्याचार से अवगत हो गई। वह ट्रिस्ट के रास्ते में जहाज पर अनेक यहूदियों से भी मिले।

म्यूनिख में न्यूक्लीय भौतिकी की अमित संभावनाओं को उन्होंने समझा। प्रतिदिन नवीन एवं उत्तेजनापूर्ण अनुसंधान किए जा रहे थे। एक प्रयोगशाला के द्वार पर उन्होंने एक सूचना देखी जिसमें लिखा था कि "सावधान हो जाओ, यहां द्रव्य को तोड़ा और पुनः निर्मित किया जा रहा है।" उनहोंने एक माह आक्सफोर्ड में व्यतीत किया तत्पश्चात मैसाकुसेट्स स्थिति कैम्ब्रिज के हार्वर्ड कालेज की प्रयोगशाला में चले गए। उस समय उनके व्यक्तिगत मित्र डॉ. हार्लोशेपले निदेशक के पद पर थे। जिन दिनों वे वहां ठहरे थे उन्होंने एक लेख "समताप-मंडलीय खगोल भौतिकी की प्रयोगशाला पर" प्रकाशित किया। उन्होंने प्रागुक्ति की कि सौर स्पेक्ट्रम का अध्ययन ओजोन स्तर के ऊपर किया जाए तो हाईड्रोजन की लाइमन रेखाएं उत्सर्जन में मिलेगी। इसका सत्यापन 18 वर्ष वाद अंतरिक्ष में V-Z राकेट भेज कर किया गया। इस प्रकार के प्रयोग आजकल सामान्य रूप से किए जाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में उन्होंने महत्वपूर्ण प्रयोगशालाओं और खगोल भौतिकी-वेधशालाओं की विस्तृत यात्रा की। वे प्रोफेसर ई. ओ. लारेंस से मिले और कैलिफोर्निया स्थित बार्कले में उनकी साइक्लोट्रान प्रयोगशाला को देखा। यूरोप से लौटते समय वे कोपनहेगेन में न्यूक्लीय भौतिकी पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में सम्मिलित हुए। इस बैठक में विश्व के इस क्षेत्र में संलग्न अग्रणी वैज्ञानिकों ने भाग लिया। यह सब विखंडन की खोज के ठीक दो वर्ष पहले हुआ था।

1938 में इंडियन साइंस कांग्रेस एसोसिएशन ने कलकत्ता में अपनी रजत जयंती मनाई। लार्ड रदरफोर्ड इस बैठक की अध्यक्षता करने वाले थे, पर इस अवसर

के कुछ ही महीनों पूर्व उनका देहांत हो गया। उनका स्थान सर जैम्स जिन्स ने ग्रहण किया। वहां आने वाले दूसरे विख्यात वैज्ञानिक सर आर्थर एडिंग्टन थे जिन्होंने साहा के निमंत्रण पर दिसंबर 1937 में इलाहाबाद की यात्रा की।

प्रोफेसर साहा ने इलाहाबाद में एक सुखदायक मकान इस विचार से बनवाया था कि वह उनका स्थायी निवास होगा। सारा उत्तर प्रदेश, विशेषकर इलाहाबाद के नागरिक उनका बड़ा सम्मान करते थे। परंतु 1938 में विश्वविद्यालय के वातावरण पर राजनीति के घने बादल छा गए और उनके लिए विश्वविद्यालय में मर्यादा एवं सम्मान के साथ काम करना असंभव प्रायः हो गया। अतएव वे अन्य स्थानों में काम ढूंढ़ने लगे।

इलाहाबाद के प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है कि "डॉ. साहा साहसी एवं स्वतंत्र विचारों के व्यक्ति थे। विश्वविद्यालय के मामलों का कुछ दिनों तक जैसा संचालन किया जाता था उसे वे ठीक नहीं समझते थे। जब उसमें सुधार की कोई आशा नहीं दिखाई पड़ी तब वे इलाहाबाद से चले गए और अपने पद को छोड़ दिया। उनके परम मित्र डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी ने कलकत्ता विश्वविद्यालय में उनका पदार्पण आसान कर दिया।"

वास्तव में उनके पास दो प्रस्ताव आए एक कलकत्ता विश्वविद्यालय के पालित प्रोफेसर के लिए और दूसरा बंबई के रायल इंस्टीट्यूट आव साइंस के प्रिंसिपल के लिए। उन्होंने प्रथम प्रस्ताव को पसंद किया। यहां एम.एन. साहा तथा एस.एन. बोस के वृत्तिक में समानता दिखाई पड़ती है। दोनों को ही सर आशुतोष ने चुना था, फिर भी दोनों को लगभग एक ही समय छोड़ना पड़ा। परंतु घटनाचक्र पूर्ण तब हुआ जब दोनों अपने विद्यालय में वापस आए–साहा 1938 में और बोस 1946 में।

5

मातृ विद्यालय में पुनरागमन–एक संस्थान का जन्म

जुलाई, 1938 में जब साहा पुनः लौट कर कलकत्ता विश्वविद्यालय में पालित प्रोफेसर एवं भौतिकी विभाग के अध्यक्ष बन कर आए तब वहां का दृश्य काफी बदल गया था। सर आशुतोष दिवंगत हो चुके थे, तथा रामन वहां से जा चुके थे। उस समय श्यामा प्रसाद मुकर्जी कुलपति थे। यद्यपि उनका कार्यकाल शीघ्र समाप्त होने वाला था। उनके स्थान पर सर मुहम्मद अज़ीज़ुल हक़ आए। रामन एवं साहा के बीच कुछ दिनों के लिए डी.एम. बोस पालित प्रोफेसर के रूप में काम करते रहे। वे सर जे.सी. बोस के भतीजे थे। भौतिकी विभाग में एस.के. मित्रा घोष प्रोफेसर थे और बी.बी. रे खैरा प्रोफेसर। चार प्राध्यापक थे : एस.के. आचार्य, जे. सी. मुखर्जी, चक्रवर्ती तथा डी. बैनर्जी।

साहा के सहपाठी और पहले के सहयोगी उस समय तक अन्य विभागों के अध्यक्ष बन गए थे और धर्मादा पीठों को ग्रहण किए हुए थे : एन.आर. सेन अनुप्रयुक्त गणित में (घोष प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष), पी.सी. मित्तर रसायन शास्त्र में (पालित प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष), जे.एन. मुखर्जी (घोष प्रोफेसर), प्रियरंजन रे (खैरा प्रोफेसर) पी.एन घोष अनुप्रयुक्त भौतिकी में (घोष प्रोफेसर), वी.सी. गुहा अनुप्रयुक्त रसायन में (घोष प्रोफेसर), गिरेन्द्र शेखर बोस मनोविज्ञान में, एस.पी. अगारकर वनस्पति विज्ञान में (घोष प्रोफेसर) हिमाद्री कुमार मुखर्जी प्राणि विज्ञान में। कला विभाग में इसके अपने हिस्से के विख्यात विद्वान थे। इलाहाबाद की अपेक्षा कलकत्ता में बौद्धिक समुदाय बड़ा एवं विविधतापूर्ण था। अतएव साहा अब बड़े विस्तृत आधार से काम कर सकते थे। अब वह राष्ट्रीय प्रतिष्ठा के महत्वपूर्ण व्यक्ति थे और अपने अनुसंधान कार्य से बराबर बाहर बुला लिए जाते थे। कलकत्ता लौटने के तुरंत बाद, वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की राष्ट्रीय योजना समिति के कार्य में संलग्न हो गए। परंतु उन्होंने पालित प्रयोगशाला में अनुसंधान संगठन के काम की अपेक्षा नहीं की बल्कि इसे पूर्ण उत्साह से अपने हाथ में ले लिया।

पहला काम जो उन्होंने किया वह था भौतिकी में एम.एससी. के पाठ्य

विवरण का ढांचा बदलना। इसे कई चरणों में किया गया और उनके विभागाध्यक्ष रहने की सारी अवधि में यह प्रयास चलता रहा । 1939 में विखंडन की खोज के तुरंत बाद उन्होंने 1940 में एक सामान्य तथा एक विशिष्ट पर्चा न्यूक्लीय भौतिकी में प्रचलित किया। इसके साथ एक सामान्य पर्चा क्वांटम यांत्रिकी में भी जोड़ दिया गया।

चूंकि स्नातकोत्तर शिक्षा संयुक्त रूप से चल रही थी जिसमें प्रेसिडेंसी कालेज के विद्यार्थी तथा अध्यापक भी सम्मिलित थे इसलिए समन्वयन सदा आसान नहीं होता था। साहा के मित्र स्नेहमय दत्त प्रेसिडेंसी कालेज के भौतिकी विभाग के अध्यक्ष थे, उन्होंने अपनी सेवाएं अर्पित करने में कभी आनाकानी नहीं की।

साहा ने तत्पश्चात प्रयोगशाला पर ध्यान दिया। पालित प्रयोगशाला में केवल दो कमरे थे जिनमें रामन के स्पेक्ट्रमलेखी रखे थे। ये उपस्कर पालित ट्रस्ट द्वारा दिए गए अनुदान से खरीदे गए थे और इंडियन एसोसिएशन फार दि कल्टीवेशन आव साइंस ने उन्हें लौटाया था। साहा की इस विषय में रुचि नहीं थी पर वे इस बात के लिए उत्सुक थे कि यंत्रों को काम में लाया जाए। उन्होंने सुकुमार चन्द्र सरकार को जो पालित प्रोफेसर के अनुसंधान सहायक थे, राय दी कि वे अपना काम इस क्षेत्र में स्वतंत्र रूप से करें। बाद में सरकार इंडियन एसोसिएशन में महेन्द्रलाल सरकार प्रोफेसर नियुक्त हो गए और रामन प्रभाव पर अपना काम करते रहे।

डी.एम. बोस का काम मुख्य रूप से चुंबकत्व तथा परमाणु भौतिकी पर था। जब वह अपने चाचा जे.सी. बोस के अनुवर्ती बोस संस्थान के निदेशक बने तब अपने साथ अधिकतर उपस्कर लेते गए। साहा की भी अभिरुचि उस मार्ग पर चलने की नहीं थी। इलाहाबाद में साहा ने अयनमंडल और उच्चतर वायुमंडल पर काम प्रारंभ कराया था, पर कलकत्ता में उसी काम को करने में एस.के. मित्र लगे हुए थे। साहा उसी प्रयास को दुबारा नहीं करना चाहते थे। खैरा प्रयोगशाला में बी. बी. रे ने X- किरण स्पेक्ट्रमिकी में पहले ही ख्याति अर्जित कर ली थी। इस क्षेत्र में साहा ने इलाहाबाद में भी काम प्रारंभ कराया था। वास्तव में साहा तथा रे ने संयुक्त रूप से 1927[30] में एक लेख लिखा था। बी.बी. रे की इस अनुसंधानशाला को विकसित करने के लिए छोड़ दिया गया। खगोल भौतिकी में कोई कार्यकर्ता नहीं था।

साहा ने अंत में न्यूक्लीय भौतिकी में काम करने का निश्चय किया। तारकीय पिंडों के आयनीकरण से वास्तव में परमाणु के हृदय तक की यह यात्रा सचमुच लंबी थी। न्यूक्लीय भौतिकी में साहा की अभिरुचि उनके यूरोप तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के पिछले प्रवास के दिनों से ही देखी जा सकती है। पश्चिम का वैज्ञानिक समुदाय एकाएक प्रबल परमाणु के रहस्य को ढूंढ़ने के लिए उठ खड़ा हुआ था।

1939 में हाल और स्ट्रासमान ने न्यूक्लीय विखंडन का अनुसंधान किया था। साहा ने इसे एम.एससी. के पाठ्य विवरण में बिना देर किए शामिल कर दिया, ताकि उनके विद्यार्थी भौतिकी में अद्यतन विकास से परिचित हो सकें। साहा संयुक्त राज्य अमेरिका स्थित बार्कले में लारेंस की विकिरण प्रयोगशाला भी देखने गए थे, जहां कणों को तीव्र बनाने के लिए त्वरित्रों का उपयोग किया जा रहा था। ऐसे प्रयोगों पर बहुत अधिक व्यय होता है। कम बजट के अनुसंधानों के दिन लद गए थे। परंतु समस्या यह थी कि अधिकारियों को कैसे विश्वास दिलाया जाए ? अब तक शोध के लिए अनुदान हजारों में दिए जाते थे परंतु अब परिष्कृत अनुसंधान का परास एवं विस्तार लाखों रुपयों की अपेक्षा रखता था। अनुसंधान उपस्करों के विपुल व्यय ने जे.सी.बोस की निजी प्रयोगशाला के समान व्यक्ति विशेष द्वारा स्वयं अपनी प्रयोगशाला रखने का विचार असंभव बना दिया।

परंतु वे आदमी कहां थे जिनके साथ वे फिर से काम शुरू करते ? उनके अनुसंधान सहायक डॉ. एस.सी. सरकार के अतिरिक्त डॉ. एन.एन. दास गुप्ता थे जो इंग्लैंड में प्रशिक्षित होकर वापस आए थे और थोड़े से अनुसंधान छात्र थे जैसे कमलेश रे, परेशचन्द्र भट्टाचार्य। केवल यही लोग तुरंत काम के लिए उपलब्ध थे। ब्रह्मांड किरण पर अनुसंधान गाइगेर गणित्रों और प्रयोगशाला में निर्मित उपस्करों से प्रारंभ किया गया। अन्य नए स्नातकोत्तर छात्र उसकी सहायता के लिए आए। यह आरंभ यथोचित था, पर साहा बड़े पैमाने पर काम करना चाहते थे। वे साइक्लोट्रान जैसी न्यूक्लीय सुविधा जिसे उन्होंने बार्कले में देखी थी प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध थे ताकि वह न्यूक्लीय अनुसंधान के कोड का काम कर सकें।

साइक्लोट्रान का मूल्य तथा आवर्ती व्यय विश्वविद्यालय की बजट-क्षमता के बाहर था। इसके अतिरिक्त द्वितीय विश्वयुद्ध चल रहा था। अतएव राजनैतिक जलवायु भी बड़े बड़े कार्यक्रम को आरंभ करने के अनुकूल नहीं थी। 1939-41 के वर्षो मे साहा राष्ट्रीय योजना समिति की बैठकों में बहुधा पंडित नेहरू से मिलते रहे। वे न्यूक्लीय ऊर्जा की संभावनाओं के बारे में पंडित नेहरू को विश्वास दिलाने में सफल हुए थे। देश के भविष्य में औद्योगिकीकरण के संबंध में नेहरू का उन्हीं के समान दृष्टिकोण था। इसी बीच साहा वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान मंडल के सदस्य नियुक्त हो गए। वे ऐसे व्यक्ति थे कि उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। नेहरू ने टाटा ट्रस्टों को एक साइक्लोट्रान प्रयोगशाला स्थापित करने के लिए आवश्यक धन देने को सहमत कर लिया। टाटा एंड सन्स, बंबई से 1940 में प्राप्त 60,000 रुपयों से कार्यारंभ हुआ। शीघ्र ही साइक्लोट्रान के रचक घटकों को खरीदने के लिए क्रयादेश दे दिए गए। बी.डी. नाग चौधरी उस समय साइक्लोट्रान के आविष्कारक अर्नेस्ट लारेंस के अंतर्गत काम कर रहे थे। घटकों के क्रय करने का काम उनको सौंप दिया गया। अक्तूबर 1941 में नाग चौधरी

कलकत्ता वापस आ गए और साइक्लोट्रान अधिकारी के रूप में साहा के साथ मिलकर काम करने लगे। जापान के साथ लड़ाई छिड़ जाने के कारण एक अत्यंत महत्वपूर्ण एकक को जिसमें निर्वात पंप होता है, भारत पहुंचने में बाधा पड़ी। साहा ने तब सी.ए.आई.आर. (वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद) को प्रयोगशाला में पंप निर्माण करने से संबंधित धन की व्यवस्था के लिए एक योजना पेश की। कमलेश रे ने साइंस कालेज की कार्यशाला में यांत्रिक एवं विसरण पंप बनाने का काम बड़ी योग्यतापूर्वक संपन्न कर लिया था। परंतु ये पंप वृहद साइक्लोट्रान कोष्ट के लिए अपर्याप्त साबित हुए। इस प्रकार प्रारंभ से ही काम कठिनाइयों से घिरा हुआ था।

1942 तक राजनैतिक स्तर पर द्रुत परिवर्तन हो गए थे। सुभाष चन्द्र बोस अपने कलकत्ता के घर से गायब हो गए थे। और धुरी राष्ट्रों से जा मिले थे। महात्मा गांधी ने अपना 'भारत छोड़ो' आंदोलन चलाया जिसमें सारा राष्ट्र सम्मिलित हो गया। स्वभावतः इससे विद्यार्थी समाज तथा अनुसंधानकर्ता भी प्रभावित हुए। धीरे धीरे यह स्पष्ट हो गया कि ब्रिटिशराज के दिन अब गिने-चुने रहे गए हैं। युद्ध में तथा युद्धोपरांत विकास में संयुक्त प्रयास करने के लिए भारतीय वैज्ञानिकों को प्रलोभन देने एवं शामिल करने के प्रयास किए गए। रायल सोसाइटी के सचिव प्रोफेसर ए.वी. हिल भारत आए। प्रत्येक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक से मिले और पांच महीने के लिए एक सद्भावना मिशन को प्रायोजित करने में सफल हुए और वैज्ञानिकों को इंग्लैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाडा स्थित विभिन्न अनुसंधान सुविधाओं को देखने के लिए आमंत्रित किया। एस.एस. भटनागर के नेतृत्व में एक दल, जिसमें नज़ीर अहमद, एस.एल. भाटिया, एम.एन. साहा, जे.सी. घोष, एस.के. मित्रा और जे.एन. मुकर्जी शामिल थे, इस यात्रा पर गया।

संसार ने हिरोशिमा तथा नागासाकी का नाम तब तक नहीं सुना था, क्योंकि बम अभी बनने थे। वास्तव में जब साहा अक्तूबर, 44 में सद्भावना मिशन की यात्रा पर सं. रा.अ. में पहुंचे तो बम, यथासंभव कड़ी से कड़ी सुरक्षा में, उत्पादन के अंतर्गत थे। मैनहाट्टन परियोजना की रक्षा गोपनीयता द्वारा की जा रही थी और किसी को परमाणु ऊर्जा के संबंध में बात करने की आज्ञा नहीं थी। इन सब बातों से अनभिज्ञ साहा ने इस दिशा में अनुसंधानों के संबंध में सं.रा.अ. में क्या किया जा-रहा था यह जानने की अनभिप्रेत जिज्ञासा की। एफ.बी.आई. (फेडरल ब्यूरो आव इन्वेस्टीगेशन आव अमेरिका) तुरंत सजग हो गया और भारतीय वैज्ञानिकों पर सूक्ष्म निगरानी रखने लगा। साहा ने ब्रिटिश वैज्ञानिकों से विज्ञान की सामाजिक-प्रासंगिकता पर बात की। वे बार्कले में लारेंस से मिले और प्रमुख औद्योगिक एवं विश्वविद्यालयी प्रयोगशालाओं को देखने गए।

बम सफल रहा। इसने युद्ध को समाप्त कर दिया, पर रातों रात न्यूक्लीय

अनुसंधान के वातावरण को बदल दिया। युद्ध की असाधारण दशा के कारण अधिकांश वैज्ञानिकों की भीड़ संयुक्त राज्य अमेरिका में चली गई जहां विपुल सरकारी खर्च और विशाल पैमाने पर समन्वयन से परमाणु ऊर्जा को व्यावहारिक रूप में प्राप्त किया जा सका। इस प्रकार यद्यपि मूल अनुसंधान यूरोप से आए थे तथापि संयुक्त राज्य अमेरिका अब न्यूक्लीय अनुसंधान में बहुत आगे बढ़ गया था। परमाणु बम के बाद उन्होंने अपना प्रयास संधृत श्रृंखला अभिक्रिया के प्रयोग पर केंद्रित किया जिसके द्वारा विद्युत पैदा की जा सके। परंतु अपने सामरिक महत्व के लाभ के कारण संयुक्त राज्य अमेरिका अपने न्यूक्लीय गुप्तियों को अन्य लोगों से साथ नहीं बांटना चाहता था।

इससे साहा कठिनाई में पड़ गए। परंतु वे ऐसे व्यक्ति नहीं थे जो आसानी से टाले जा सकें। उन्हें यह विदित हो गया कि न्यूक्लीय अनुसंधान के लिए एक अलग संस्थान की आवश्यकता है। तत्कालीन बंगाल की सरकार ने सहायता का हाथ बढ़ाने की अपेक्षा उनके प्रयासों में रुकावट ही डाली। पंरतु और दान मिलने आरंभ हो गए—श्री रानदा प्रसाद साहा ने कनाडा से यूरेनियम क्रय करने के लिए 45,000रुपए दिए, डा.बी.सी. ला ने एक इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी खरीदने के लिए 17,500रुपए दिए, जिसके लिए कलकत्ता विश्वविद्यालय ने पहले ही 60,000रुपए दिए थे। 1943 में जी.डी. बिड़ला ने 12,000रुपए प्रदान किए। बिड़ला एवं टाटा के अनुदानों का पांच वर्ष तक आवर्तन होने वाला था।

इस बीच 1945 में जब एस.एन.बोस खैरा प्रोफेसर के रूप में आ गए तब भौतिकी विभाग और समर्थ बन गया। कुछ वर्ष पूर्व बी.बी. रे के असामयिक निधन के बाद से यह पद रिक्त था।

जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में नई सरकार बनने से साहा को अपनी अभिलाषा पूर्ति का एक अवसर दिखाई पड़ा। पश्चावलोकन करने से जान पड़ेगा कि साहा द्वारा एकत्र किया गया संसाधन कार्य के लिए अपर्याप्त था। साहा का विचार था कि प्रारंभ तो पहले कर ही देना चाहिए। इस प्रकार. 21 अप्रैल 1948 को इंस्टीट्यूट आव न्यूक्लियर फिजिक्स (नाभिकीय भौतिकी संस्थान) का जन्म हुआ।

डा. श्यामा प्रसाद मुकर्जी का साहा के इस प्रयास में प्रबल सहयोग था और वे इस समय भारत सरकार के आपूर्ति एवं उद्योग विभाग के मंत्री थे। इसलिए यह उचित ही था कि नाभिकीय भौतिकी के संस्थान की आधारशिला श्यामा प्रसाद द्वारा रखी जाए। उस समय कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति डा.पी. एन. बैनर्जी ने जिन्होंने साहा को धन एकत्र करने में बड़ी सहायता दी थी, समारोह की अध्यक्षता की। इसके पूर्व कुलपति ने सूर ट्रस्टों से दो लाख रुपयों के ऋण की व्यवस्था की थी। केंद्रीय सरकार ने 3.50 लाख रुपयों का एक अनुदान दिया था और बाद

में परमाणु ऊर्जा आयोग ने 1.20 लाख रुपए प्रदान किए। इस राशि से एक तिमंजिले भवन का निर्माण किया गया जिसमें प्रयोगशाला और कार्यालय के लिए लगभग 3,000 वर्गमीटर स्थान था।

संस्थान का विधिवत उद्घाटन 11 जनवरी, 1950 को नोबेल लारियेट (पुरस्कार विजेत्री) ईरीन जोलिओ–क्यूरी द्वारा किया गया, जो स्टेडियम की आविष्कारिका की पुत्री थीं। कुलपति न्यायमूर्ति सी.सी. विश्वास के अतिरिक्त फ्रेडरिक जोलियो, राबर्ट राबिन्सन तथा जे.डी. बर्नल भी उपस्थित थे। यह महत्वपूर्ण है कि संस्थान का उद्घाटन किसी राजनीतिक ने नहीं बल्कि एक वैज्ञानिक ने किया जो मानव कल्याण के लिए विज्ञान की सामाजिक चेतना एवं कार्य में साहा के समान विश्वास करती थी।

लगभग उसी के साथ परमाणु ऊर्जा आयोग अधिनियम 1948 पारित हुआ था और 1949 में परमाणु ऊर्जा आयोग एच.जे. भाभा के सभापतित्व में बना। एस.एस. भटनागर और के.एस.कृष्णन् इसके सदस्य थे।

साहा अब इस बात के प्रयत्न में जुट गए कि संस्थान को स्वायत्त संस्था के रूप में ठोस आधार पर खड़ा कर दिया जाए। उन्हें विश्वास था कि व्यक्तिगत दान अथवा विश्वविद्यालय के साधनों से ही इस प्रकार की कार्रवाई की मांग की पूर्ति नहीं हो सकती। वृहद विज्ञान के युग का समारंभ हो रहा था और अन्य कोई केवल सरकार ही इतनी अधिक खर्चीली परियोजना के लिए धन जुटा सकती थी। उन दिनों संस्थान के सभी कार्य कलकत्ता विश्वविद्यालय के सिंडीकेट और सिनेट के माध्यम से होते थे। कुलपति न्यायमूर्ति एस.एन. बैनर्जी और श्यामा प्रसाद मुकर्जी की सहमति से कलकत्ता विश्वविद्यालय के सिनेट ने 12 मई 1951 की अपनी बैठक में एक ऐसी स्वायत्त संस्था बनाने की अनुमति दे दी जिसका अपना संविधान हो और जिसकी संचालन समिति विश्वविद्यालय के ढांचे के अंतर्गत काम करे। यद्यपि विश्वविद्यालय की आर्थिक सहायता नाममात्र को रहती फिर भी कुलपति को नाभिकीय भौतिक संस्थान की संचालन समिति का पदेन सभापति बनाया गया। प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू संस्थान में बड़ी अभिरुचि रखते थे। कुलपति का नेहरू से बहुधा पत्राचार होता था जिसमें संस्थान के निर्माण के संबंध में उनका परामर्श मांगा जाता था। यह सिनेट में कुलपति के 1951 के भाषण से स्पष्ट होता है। नेहरू के पत्रों से कुछ उद्धरण दिए जाते हैं–

"हमारे साधन वैज्ञानिक क्षमता तथा अन्य बातों में भी अति सीमित हैं यद्यपि हमें आशा है कि उसमें वृद्धि होगी। अतएव हमें उनका सर्वोत्तम उपयोग करना होगा। उनका समन्वयन समग्र भारत के आधार पर करना आवश्यक होगा। इसके तथा अन्य कई कारणों से हमारी ओर से कुछ सुझाव दिए गए ताकि आपके नाभिकीय भौतिकी संस्थान को और अधिक सर्वभारतीय रूप दिया जा सके। यह

सच है कि इसे चलाने और दिन-प्रतिदिन नियंत्रण का काम स्वभावतः संस्थान के निदेशक और संचालन समिति के सभापति तथा सचिव के अधीन होगा। पर व्यापक सिद्धांतों के लिए, स्वयं संस्था तथा भारत में नाभिकीय भौतिकी एवं समान विषयों के विकास के हित में होगा, यदि सर्व-भारतीय रूप बना रहे।

"जहां तक भारत सरकार का संबंध था नाभिकीय भौतिकी का संस्थान अच्छा और कीमती काम कर रहा था और भारत सरकार उसे अनुदान देकर यथासंभव सहायता करना चाहती थी।"

नेहरू के एक और पत्र से प्रकट होता है—

"आपका 3 अप्रैल का पत्र पाकर मुझे प्रसन्नता हुई, विशेषकर यह जानकर कि नाभिकीय भौतिकी-संस्थान की संचालन समिति के गठन के लिए कदम उठाए जा रहे हैं तथा संस्थान जुलाई 1951 से अखिल भारतीय संस्थान के रूप में कार्यारंभ कर देगा।"

स्वायत्त संचालन समिति की पहली बैठक 22 जून, 1951 को हुई। संस्थान के छात्र-महाकक्ष (हाल) की आधार-शिला रखने के अवसर पर प्रोफेसर साहा ने उन क्षेत्रों का वर्णन किया जिसमें वे संस्थान के कार्य को बढ़ाना चाहते थे (क) कण त्वरित्र, (ख) नाभिकीय भौतिकी, (ग) यंत्रीकरण, (घ) नाभिकीय रसायन, (च) सैद्धांतिक नाभिकीय विज्ञान (छ) न्यूट्रान भौतिकी (ज) एम. एससी. उत्तर अध्यापन प्रभाग। उन्होंने अल्प अवधि में ही कर्मचारियों तथा छात्रों द्वारा प्राप्त की गई उपलब्धियों पर विस्तार से प्रकाश डाला।

एम.एससी. उत्तर पाठ्यक्रम अब अति सामान्य हो गए हैं। परंतु इस संकल्पना का प्रथम प्रयोग साहा द्वारा नाभिकीय भौतिकी संस्थान में किया गया था। यह एक वर्षीय पाठ्यक्रम छात्रों को इन कार्यो के योग्य बनाने में सहायक होता—(1) नाभिकीय भौतिकी की किसी शाखा में अनुसंधान करना, (2) भारत सरकार के परमाणु ऊर्जा विभाग की विभिन्न परियोजनाओं में नियुक्ति; (3) विभिन्न विश्वविद्यालयों तथा तकनीकी कालेजों में अध्यापन (4) नाभिकीय विज्ञान को चिकित्सा-विज्ञान, जीव विज्ञान, रसायन शास्त्र तथा अन्य विज्ञानों में उपयोग करना। पचास विद्यार्थियों के प्रवेश की व्यवस्था की गई थी जिसमें से 50% स्थान पश्चिम बंगाल से बाहर के विद्यार्थियों के लिए सुरक्षित थे।

एम.एससी. उत्तर का पाठ्यक्रम सारे भारत के स्नातकोत्तर विज्ञान के विद्यार्थियों का मिलन स्थल बन गया और संस्थान को अखिल भारतीय रूप प्रदान किया जिसकी इसमें पहले कमी थी। संस्थान के भूतपूर्व छात्र अब इस देश में और बाहरी देशों में महत्वपूर्ण पदों पर विराजमान हैं। एक नाम कलकत्ता विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति का दिया जा सकता है, जो संस्थान की संचालन समिति के पदेन सभापति भी थे, वे प्रथम क्षेप के छात्र थे। कलकत्ता में स्वयं साहा के

शैक्षणिक कार्य का सारांश कोठारी[34] द्वारा भलीभांति दिया गया है–

"कलकत्ता में उनके अनुसंधान अधिकतर परमाणु नाभिकों के वर्णीकरण पद्धति से संबंधित थे, विशेषकर बीटा सक्रियता, अयन मंडल में चुंबकीय विद्युत तरंगों का प्रसारण; और किरीट की समस्या। किरीट के विषय में एक महत्वपूर्ण समस्या यह जानना है कि आयन परमाणुओं में उच्च मात्रा में आयनीकरण की क्रियाविधि या स्रोत क्या है जिससे 9 से 13 इलेक्ट्रानों तक की हानि होती है। एक और समस्या आंतरिक किरिट में निकेल की उपस्थिति है जो किरीट की चमकीली स्पेक्ट्रामी रेखाओं के उद्भव पर बी.एड्लेन के विलक्षण कार्य (1938) से निश्चित रूप से प्रकट है। साहा के अंतर्गत काम करते हुए डी.एन. कुंड ने दिखाया कि उनमें से कुछ रेखाएं उच्च आयनित कोबाल्ट परमाणुओं के कारण हो सकती हैं। तीव्र आयनीकरण, एवं बाह्य किरीट से प्रकीर्ण विकिरण में फ्रानहोफर रेखाओं का अत्यंत चौड़ा हो जाना, तथा कुछ मीटरों की कोटि की तरंगें दैर्घ्यों के आसपास प्रबल किरीटीयरेडियो-उत्सर्जन, सभी किरीटीय ताप के दस लाख अंश की कोटि में होने का संकेत करते हैं। परंतु इन तापों के उद्भव की समस्या जिनकी तुलना तारकीय अभ्यंतरों में विद्यमान तापों से की जा सकती है, अभी तक अधिकतर सुलझी नहीं है। साहा को इतने उच्च तापों की उपस्थिति मानना कठिन लगा। वास्तव में, एड्लेन रेखाओं का कारण बताने के लिए आवश्यक उच्च आविष्ट आयन सूर्य के बाहर वायुमंडल में होने वाले विखंडन के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं या U या Th के तीन या चार विखंडन होने का उनका सुझाव था। सूर्य एवं अन्य तारकीय पिंडों से रेडियो तरंगों के उत्सर्जन पर भी उनका ध्यान गया और उन्होंने चुंबकीय क्षेत्र और H-परमाणु की आद्य अवस्था की अतिसूक्ष्म संरचना स्तर-विपाटन की संभावित भूमिका पर विचार व्यक्त किया (नेचर, लंदन 158,717, 1946) वह रेडियो स्पेक्ट्रमों में 21 से.मी. हाइड्रोजन रेखा के रेखा-उत्सर्जन होने की संभावना कम से कम स्पष्ट रूप से मानने में असमर्थ रहे। उस समय वह एच-सी-वान डी हल्स्ट की पहले की प्रागुक्ति से अवगत नहीं थे। भौतिकी के वर्तमान पालित प्रोफेसर बी.डी. नाग चौधरी के सहयोग से साहा ने भारतीय चट्टानों के भूवैज्ञानिक काल की समस्या के बारे में अनुसंधान किया।" (एक और महत्वपूर्ण कार्य परमाण्विक संघटन पर साहा ने अपने छात्र देवीदास बसु के सहयोग से किया था। "गैसों से होकर जाते हुए धनात्मक आयनों द्वारा इलेक्ट्रानों के प्रग्रहण पर" जो लेख 1945 में प्रकाशित हुआ था वह इस विषय के आधुनिक साहित्य में अक्सर उद्धृत किया जाता है।)

संस्थान की नींव रखने के अवसर पर 1948 में प्रकाशित विवरणिका में 1940-48 के बीच 71 अनुसंधान प्रकाशनों की सूची थी। इस काल में साहा के वरिष्ठ सहयोगी थे : एस.सी. सरकार, एन.एन. दासगुप्ता तथा बी.डी. नागचौधरी।

उनके छात्रों और अनुसंधानकर्ताओं में शामिल थे : के.सी. मुकर्जी, पी.के. सेन चौधरी, ए.के. साहा, अम्बुज मुकर्जी, बी.सी. पुरकायस्थ, एस.एन. घोषाल, सुकुमार विश्वास, सुनील कुमार सेन, शांतिमय चटर्जी नाभिकीय भौतिकी में कार्यरत, पी. सी. भट्टाचार्य, एस.के. घोष, पी.के. भट्टाचार्य एवं आर.के. दास अंतरिक्ष किरणों में; बी.एम. बैनर्जी और ओ.एन. राय यंत्रीकरण; के.सी. नियोगी, जे.आर. बसुमल्लिक, एम.डी. सेन गुप्ता तथा कमलेश रे सामान्य भौतिकी में; बी.एस. बिशुयी रामन प्रभाव में, एन.एन. साहा तथा एस.के. चौधरी X-किरणों में, डी.एन कुंडू सौर भौतिकी में और वी.के. बैनर्जी तथा यू.सी. गुहा उच्च वायुमंडल में। अंतरिक्ष किरणों में साहा की अभिरुचि के कारण कुछ रोचक परिणाम शीघ्र ही सामने आए; विशेषकर कलकत्ता एवं दार्जिलिंग में अंतरिक्ष किरणों की तीक्ष्णता के मापने से μ-सेसान की जीवन-अवधि का निर्धारण। परंतु अंतरिक्ष किरणों का अध्याय कुछ समय बाद बंद हो गया।

1955 में प्रकाशित पुस्तिका में जिसमें प्रस्तावित पंचवर्षीय (1955-60) योजना का वर्णन है, 52 अनुसंधान लेखों (1949-55) की एक सूची भी है। इसमें पहले उल्लिखित विषयों के अतिरिक्त नाभिकीय रसायन, अयनमंडल में विद्युत चुंबकीय तरंगों का प्रसारण, जैवभौतिकी, ठोस अवस्था भौतिकी, न्यूक्लीय चुंबकीय रूप सम्मिलित था। साहा ने डॉ. एन.एन. दास गुप्ता और उनके छात्रों द्वारा जैव भौतिकी पर भी काम प्रारंभ कराया।

नाभिकीय भौतिकी संस्थान की 1954-59 की पंचवर्षीय योजना से साहा इन चीजों को चाहते थे—

(क) कण त्वरित्र : साइक्लोट्रान के अतिरिक्त वे एक इलेक्ट्रान सिन्कोट्रान स्थापित करना चाहते थे—

(ख) नाभिकीय भौतिकी : अल्फा, बीटा एवं गामा स्पेक्ट्रमिकी नाभिकी प्रेरण तकनीक और सूक्ष्मतरंग स्पेक्ट्रमिकी के अध्ययन से संबंधित;

(ग) इलेक्ट्रानिकी एवं रेडियो (यंत्रीकरण);

(घ) नाभिकीय रसायन;

(च) सैद्धांतिक नाभिकीय विज्ञान

(छ) न्यूट्रान भौतिकी;

(ज) एम.एससी.उत्तर अध्यापन।

पंचवर्षीय योजना के प्रस्ताव अंत में काट-पीट कर स्वीकृत हुए। 50MμV इलेक्ट्रान सिन्क्रोट्रान का क्रय मूल्य प्रस्ताव में शामिल किया गया था। इस कार्य के लिए पद भी रखे गए। डॉ. डी.एन. कुंड ने प्रोफेसर और डॉ. ए.पी पट्रा ने रीडर का पद ग्रहण किया। परंतु प्रोफेसर साहा की इलेक्ट्रान सिन्क्रोट्रान स्थापित करने की इच्छा पूरी नहीं हुई। इस दिशा में प्रयास का अंतिम फल निकला कलकत्ता

में चर ऊर्जा सिन्क्रोट्रान की स्थापना में। यह सिन्क्रोट्रान भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र द्वारा नाभिकीय भौतिकी के साहा संस्थान, मौलिक अनुसंधान के टाटा संस्थान और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग के बहुत ही सौहार्दपूर्ण और गहरे सहयोग के साथ निर्मित किया गया था। साहा के विश्वविद्यालय किस्म के तरण ताल रियेक्टर के चतुर्दिक न्यूट्रान भौतिकी अनुभाग बनाने के विचार को परमाणु ऊर्जा विभाग द्वारा समर्थन नहीं मिला। साहा की एक अन्य कल्पना–चिकित्सा भौतिकी का संस्थान जिसमें जैव भौतिकी का विभाग रहे–वास्तविकता में नहीं परिणित हुआ। जैव भौतिकी और अणुजैविकी अब साहा नाभिकीय भौतिकी संस्थान के दो महत्वपूर्ण खंड हैं।

एम.एससी. उत्तर पाठ्यक्रम के साथ स्थापित संस्थान एक प्रकार से एक नई संकल्पना और एक नया प्रयोग था क्योंकि साहा चाहते थे कि यह विश्वविद्यालय के ढांचे के अंतर्गत एक स्वायत्त संस्था की तरह काम करे। बिल्कुल हाल तक यह बड़ी अच्छी तरह काम कर रहा था जब तक कि बाहरी ताकतों ने इसमें दखल देना नहीं शुरू किया। संस्थान भारत के सब ओर से वैज्ञानिकों और तेज छात्रों को आकर्षित करता था और इस प्रकार एक ऐसा वैज्ञानिक नेतृत्व प्रदान करता था जिसे बाद में भौतिक अनुसंधान के टाटा संस्थान ने ले लिया।

1952 में साहा पुनः गठित एसोसिएशन फार कल्टिवेशन आव साइंस के पूर्णकालिक निदेशक नियुक्त किए गए। उस समय वह कलकत्ता की दक्षिणी उपनगरी यादवपुर स्थित नए भवन में चला गया था। साहा ने आई.ए.सी. एस. के पुनः संगठन पर काफी ध्यान दिया, जिसका विवरण उनके 'अंतिम वर्ष' शीर्षक अध्याय में दिया गया है। परंतु वे नाभिकीय भौतिकी संस्थान के, जिसे 1956 में अपनी मृत्युपर्यंत सर्वाधिक प्यार करते थे, अवैतनिक निदेशक बने रहे। 1956 में वे कलकत्ता उत्तर-पश्चिम निर्वाचन क्षेत्र से संसद के स्वतंत्र सदस्य चुने गए।

1955 तक संस्थान अतिसक्रिय अनुसंधान केंद्र बन गया था और देश के अंदर तथा बाहर इसकी उपस्थिति का मान था।

इस बीच साहा की अभिरुचि अन्य संगठनात्मक बातों में पहले की ही भांति चलती रही। वे 1948 में सर सर्वपल्लि राधाकृष्णन के सभापतित्व में भारत सरकार द्वारा नियुक्त विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग के सदस्य थे। 1941 में जब से वैज्ञानिक अनुसंधान बोर्ड बना, जिसका बाद में नाम 'वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद' रखा गया, साहा इसके कार्यो के साथ संबंधित रहे। वे इसकी संचालन समिति तथा इसके द्वारा गठित अन्य समितियों के सदस्य थे। उन्होंने इसके कार्य और बुद्धि में यथेष्ट योगदान दिया। उन्होंने कलकत्ता में ग्लास एंड सेरामिक रिसर्च इंस्टीट्यूट की स्थापना में अग्रणी भाग लिया। साहा इंडियन जर्नल आव फिजिक्स जिसमें उनके कुछ अत्यंत महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुए थे। और इंडियन फिजिकल

सोसाइटी के मामलों से अति संलग्न थे। साहा एशियाटिक सोसाइटी के कार्यों में भी यथेष्ट अभिरुचि रखते थे। इसकी एक कार्यावधि के लिए अध्यक्ष होने पर उन्होंने इसके कार्यो में नवजीन फूंकने की चेष्टा की। उन्हीं की प्रेरणा के फलस्वरूप दो प्रसिद्ध पुस्तकें एस.के. मित्रा का अयनमंडल और निहार रंजन रे का बंगलौर इतिहास एशियाटिक सोसाइटी द्वारा प्रकाशित की गई। वे विक्टोरिया मेमोरियल कलकत्ता के भी एक ट्रस्टी थे। वे इंडोसोवियत फ्रेंड्स सोसाइटी के अध्यक्ष और साइनो इंडियन कलचरल एसोसिएशन के उपाध्यक्ष थे।

फरवरी 1956 में साहा की मृत्यु के बाद संस्थान का नाम साहा नाभिकीय भौतिकी संस्थान रखा गया। उनके उपरांत डा.बी.डी. नागचौधरी(1956-68) पूर्णकालिक अध्यक्ष बने। अब संस्थान के कार्य में वृद्धि हो गई है और वेलगाछिया एवं साल्टलेक में स्थित दो और कैम्पस इसमें जोड़े गए हैं।

प्रोफेसर साहा ने बाहर के अपने वैज्ञानिक मित्रों से सदैव संपर्क बनाए रखा। उनकी मृत्यु के बाद उनमें से अनेक संस्थान में साहा, स्मारक व्याख्यान देने आए। व्याख्यान देने वालों में हेराल्ड स्पेन्सर जोन्स, नीलबोर, एस. चन्द्रशेखर, लारेंस ब्रैग, एल. जैनासी एवं ए.आई. ओपेरिन जैसे पुराने मित्र थे। उन्होंने संस्थान के दिवंगत वैज्ञानिक के साथ अपने साहचर्य की याद दिलाई। उन्होंने दिवंगत वैज्ञानिक की भूरि भूरि प्रशंसा की जिससे उनकी श्लाघा केवल वैज्ञानिक के लिए ही नहीं वरन उसके सहृदय व्यक्तित्व के प्रति भी व्यक्त होती थी।

6

राष्ट्रीय योजना

मेघनाद साहा जैसे मनुष्य के जीवन एवं कार्य की चर्चा करते समय सामाजिक चेतना का प्रश्न अत्यंत प्रासंगिक बन जाता है। जो कुछ उन्होंने किया उस पर वे एक ऐसे मनुष्य की छाप छोड़ गए जो सामाजिक उत्साह से प्रेरित हो रहा था। और वे इस बात में अकेले नहीं थे। जहां सी.वी. रामन जैसे वैज्ञानिक थे जो समझते थे कि उनका सच्चा काम विज्ञान की सेवा है वहीं भटनागर एवं भाभा जैसे अन्य वैज्ञानिक भी थे जिनका दृष्टिकोण सामाजिक था और देश की वैज्ञानिक परंपरा बनाने में जिनका निर्णायक प्रभाव था। इससे एक बड़ा रोचक प्रश्न हमारे सामने उठता है : किस सीमा तक वह काल, जो सब मिलाकर बड़ी घटनापूर्ण अवधि थी, इन प्रसिद्ध मनुष्यों के उत्थान के लिए उत्तरदायित्व था।

यह सच है कि भाभा ने राष्ट्रीय रंगभूमि में बड़ी देर से प्रवेश किया अर्थात जब ब्रिटिश लगभग छोड़ने के लिए तैयार थे परंतु चौथे दशक में जब साहा के अधिकतर विचारों की रूपरेखा बनी देश के भविष्य की चिंता एक प्रिय विनोद था। इसमें सभी लवलीन थे, सभी लोग मातृभूमि के लिए अपना जीवन बलिदान करने को तैयार थे। साहा जिनका प्रारंभिक समागम क्रांतिकारियों के साथ था शीघ्र ही इस भावात्मक देशभक्ति से बाहर निकल आए और एक रचनात्मक मार्ग की ओर मुड़े और द्वितीय विश्व युद्ध[35] में ब्रिटिश लोगों की हार होने की अवस्था में भारत की रक्षा के लिए उन्होंने एक सर्वागीण सुरक्षा योजना बनाई।

यदि साहा इतिहास के ठीक उस बिंदु पर नहीं उभरे होते तो क्या यह संभव था कि वे दिलोजान से राष्ट्रीय योजना की रचना में लग जाते ? ब्रिटिश लोग जा रहे थे। भारत अपनी अपरिमित समस्याओं और मुट्ठी भर देशभक्त कार्यकताओं के साथ सौभाग्य के साथ वादा निबाहने वाला था। देश की अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण के बारे में राष्ट्रीय नेताओं में अत्यंत बिखरी हुई कल्पना थी। परंतु वे विचारों का स्वागत करते थे—नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस निश्चय ही स्वागत करते थे—यद्यपि गांधी के पास अपना सुव्यवस्थित दर्शन था। यह निष्कर्ष निकालना रोचक होगा कि

यदि साहा कांग्रेस नेताओं को अपने अनर्गलहीन अधैर्यपूर्ण तरीके से विश्वास दिलाने के लिए रंगभूमि में न प्रवेश करते तो राष्ट्रीय योजना का क्या स्वरूप होता ?

कहने की बात यह है कि समय अनुकूल था। किसी न किसी प्रकार की योजना बनती ही थी। पर ऐसा हुआ कि साहा ने अपने वैज्ञानिक ज्ञान के कारण इस बात पर सम्यक विचार किया था। उन्होंने रूस के प्रयोग का सराहनापूर्वक निरीक्षण किया था और उनका विचार था, भारत में भी उन्हीं सिद्धांतों को अनुप्रयुक्त किया जा सकता है। वास्तव में, वे पहले से ही योजना बनाने तथा नदियों के नियंत्रण के संबंध में साइंस एंड कल्चर नामक जर्नल में लिख रहे थे। उत्तर प्रदेश विज्ञान अकादमी में उन्होंने ऊर्जा आपूर्ति पर एक संगोष्ठी में पंडित नेहरू से अध्यक्ष बनने को कहा था और उन्हें काफी सुझाव दिया था। वह बड़े पैमाने पर योजना बनाने और राजनैतिक अंतर्भावितता के विचारों के साथ खेल रहे थे, तभी एक महत्वपूर्ण घटना उनके द्वारा शीघ्र निर्णय लिए जाने में सहायक बन गई।

यह अवसर 1938 में एक दियासलाई की फैक्टरी खोले जाने का था। उत्तर प्रदेश की प्रथम कांग्रेस सरकार के उद्योग मंत्री ने अपने भाषण में कहा कि ''बड़े पैमाने पर औद्योगिकीकरण की दिशा'' में एक बड़ा कदम उठाया गया है। संभवतया मंत्री भावनाओं में बह गए थे। संभवतया उनका तात्पर्य वह नहीं था जा उन्होंने कहा था परंतु साहा इतनी आसानी से उनकी बात को छोड़ने वाले नहीं थे। उन्हीं के शब्दों में ''इस भाषण से मुझे अपेक्षाकृत बड़ा धक्का लगा क्योंकि इससे वह प्रकट हो गया कि एक शीर्ष के कांग्रेस नेता ने जिसे अपने प्रांत के उद्योगों के पुनर्गठन, उन्नयन और प्रारंभ कराने का महत्पूर्ण कार्य सौंपा गया था अपने भाषण से दिखा दिया कि उनको इस बात का ज्ञान ही नहीं था कि बड़े पैमाने पर औद्योगिकीकरण क्या होता है। मुझे ज्ञात हुआ कि यही हाल और कांग्रेस जनों का भी था, जो वास्तविक रूप में या भविष्य में बनाए जाने वाले मंत्री थे। उसको स्पष्ट रूप से इस बात का अनुमान हो गया कि जब उन लोगों के हाथ में अधिकार आएगा तो वे लोग ऐसे स्थलवासियों की तरह होंगे जिन्होंने कभी विस्तृत जलप्रसार नहीं देखा हो फिर भी महासागर में जहाज का मार्ग दर्शन करने के लिए जिनसे कहा गया हो, उन्हीं विचारों के वशीभूत होकर मैंने इस समस्या[36] की ओर ध्यान दिया।''

साहा गांधी जी के खादी एवं चरखा सिद्धांत के एकदम विरोधी थे। गांधी जी की ''एकदम अप्रचलित, कुछ कुछ रूमानी संकल्पना, ''पुनः गांव चलो'' पर आक्षेप करने का अवसर वे कभी नहीं छोड़ते। उनके आदर्श थे, ''रूसियों द्वारा बनाई गई औद्योगिक योजना'' और टेनेसी घाटी के समान नदी नियंत्रण। उनके सुव्यवस्थित दिमाग को जो विशेष रूप से अच्छा लगा वह सोवियत रूस के करने

का ढंग था अर्थात प्रथम चरण के रूप में वैज्ञानिक सर्वेक्षण का काम विज्ञान अकादमी को सौंपना।

अक्सर कहा जाता है कि कोई भी महापुरुष (साहित्य, संगीत अथवा विज्ञान जिस क्षेत्र में भी हो) अपने काल की आवश्यकता को पूरी करता है चाहे वह इनसे अनभिज्ञ हो या स्पष्ट रूप से इसके प्रति विद्रोह करे। विचारों में खोए रहने की अपेक्षा कर्मयोगी होने के कारण साहा स्पष्टतया जनमानस में अंकित वैज्ञानिक की छवि–लहराते हुए बालों वाला और विचारों में खोया हुआ व्यक्ति–के बाहर थे। वे बड़े ही व्यावहारिक पुरुष थे, और उनका मस्तिष्क अत्यंत तार्किक तथा विश्लेषणात्मक था। वे स्वयं विश्लेषण करते और स्वयं ही समाधान देते, परंतु जब तक दूसरों से मनवा नहीं लेते, केवल इतने से संतोष करके नहीं बैठे रहते।

साहा ने वैज्ञानिक विकास के सिद्धांत पर विस्तृत रूप से लिखा। अपने अनेक समकालीनों की भांति यह सब और व्याप्त गिरावट से गहराई तक हिल उठे थे, पर अधिकांश लोगों की भांति भूतकाल के गौरव के बारे में उनमें भ्रम नहीं था। वैज्ञानिक शिक्षण ने उन्हें स्वच्छ दृष्टि प्रदान की थी, जिससे वे हमारे अभीष्ट आदर्शों की कमजोरियों में झांक सकते थे और उनमें से अनेक को एकदम रद्द करने की उन्हें शक्ति मिलती थी। वे कहा करते थे कि जहां तक व्यक्तिगत जीवन का संबंध है विज्ञान ने विश्व के उन्नत देशों को धर्मो के महान संस्थापकों द्वारा रखे गए लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है। इसका अर्थ धर्म के स्थान पर विज्ञान को लगभग प्रतिष्ठित करने के बराबर है। बिल्कुल स्वभावतया वे इस मार्क्सवादी विचार की ओर आकर्षित हुए थे कि किसी देश का सामाजिक एवं राजनैतिक संगठन उसके उत्पादन की अर्थव्यस्था द्वारा निर्धारित होता है। बहुत पहले 1922 में यह युवा वैज्ञानिक अपने देशवासियों की आर्थिक बुराइयों के संबंध में गहरी चिंता में था यद्यपि संभावित समाधान के बारे में उसके विचार परिपक्व नहीं थे। सुभाष चंद्र बोस के आमंत्रण पर वे बंगाल युवा सम्मेलन के अध्यक्ष बने थे। उनके अध्यक्षीय भाषण में हमें अपेक्षाकृत अरुचिकर निदान[37] मिलता है।

"दो हजार वर्ष पहले चीनियों ने अपनी उत्तरी सीमा पर एक बड़ी भारी दीवार बनाई जिससे उनका विचार था कि वे आक्रमणकारियों को सदा के लिए दूर रख सकेंगे। परंतु इसके होने पर भी मंचुओं और मुगलों ने उन्हें बार बार हराया। हमारे सनातन धर्म के रक्षकों ने अनुष्ठानों और अंधविश्वासों की एक चीनी दीवार नीच जाति वालों के विरुद्ध बना रखी थी लेकिन इसका परिणाम यह हुआ कि वे पिछले हजारों वर्ष से तुर्कों, मुगलों, अफगानियों और अंग्रेजों द्वारा फुटबाल की भांति मारे जा रहे थे। हम लोगों की यह भूल होगी यदि हम समझें कि सादे जीवन का आदर्श रखने में पश्चिमी यांत्रिक सभ्यता के वेग को रोका जा सकेगा। क्या हम उस भविष्य की कल्पना कर सकते हैं जब रेलगाड़ियां, स्टीमर, तार हमारे

देश से तिरोहित हो जाएंगे—कोयला तथा लोहे की खानें निरर्थक घोषित कर दी जाएंगी। हम लोगों का कर्तव्य इनसे दूर रहना नहीं है बल्कि इन क्षेत्रों में कुशलता प्राप्त करना है ताकि व्यापार, उद्योग तथा कृषि पर हमारा नियंत्रण हो सके। मैं त्याग की भावना को हीन नहीं मानता परंतु मैं शक्ति और कार्य को इससे ऊपर मानता हूं। त्याग बहुधा अक्षमता का पर्यायवाची बन सकता है।

"आधुनिक सभ्यता की कुंजी विज्ञान है। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं हमें जीवित रहने के लिए प्रकृति से संघर्ष करना होगा और इस लड़ाई को जीतने के लिए हमें विज्ञान को यंत्र के रूप में अपनाना होगा। युवा पीढ़ी को भविष्य में प्राकृतिक शक्तियों को लोगों की भलाई के लिए उपयोग करने में हिस्सा बंटाने के लिए तैयार रहना चाहिए।"

उनका दृष्टिकोण बिल्कुल साफ साफ व्यक्त किया गया था, संभवतया यह पूर्णतया पश्चिमी आदर्शो पर आश्रित था अर्थात मनुष्य ही महत्वपूर्ण है। अंततोगत्वा इस अभिवृत्ति से गंभीर पर्यावरणीय परिणाम उभरे हैं, परंतु इस शताब्दी के तीसरे और चौथे दशकों में एक समाधान की शीघ्र आवश्यकता थी। साहा ने देख रखा था कि उन दिनों गांव में जीवन का क्या अर्थ था। उन्होंने इंग्लैंड तथा अन्य औद्योगिक राष्ट्रों के संघर्ष में प्रतिव्यक्ति आय और कार्योत्पाद निकाल रखा था, "हुगली के किनारे के ब्रिटिश मिल मालिकों पर दृष्टिपात कीजिए। वे मलेरिया ज्वर से नहीं डरते हैं क्योंकि उनके पास धन है—उन्होंने जंगलों को काट डाला है, जल विकास को अच्छा बनाया है और इस प्रकार मलेरिया के कारण का निराकरण कर दिया है। थोड़े से अंदर की ओर जाइए, गांव के आधे निवासी मलेरिया से पीड़ित हैं क्योंकि वे भाग्य को कोसने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करते।"

साहा का यह दृढ़ विश्वास था, "मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है।" विज्ञान एवं तकनीक वे उपकरण हैं जिनसे मनुष्य यह सब प्राप्त कर सकता है और किया है। उन्होंने आगामी बीस वर्षो में इस विषय पर बहुत विचार किया।

यह सोचने की बात है कि यदि सुभाष चन्द्र बोस का हाथ न होता तो क्या भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को जो पहले ही सर्वाधिक शक्तिशाली राजनैतिक दल के रूप में उभर कर आई थी इस विचारधारा को अपनाने के लिए मनाया जा सकता ? बोस 1938 में कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए और वे ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें साहा बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे। उन्होंने बोस के साथ अपनी जान-पहचान कालेज के दिनों से अक्षुण्ण रखी थी, साहा बोस के पास बधाई देने गए। छोटी छोटी बातों में समय बर्बाद करने वाले व्यक्तियों के समान न होने के कारण साहा ने उनसे प्रश्न पर प्रश्न पूछना आरंभ कर दिया। कांग्रेस देश की समस्याओं का समाधान कैसे निकालने जा रही है ? भारत के लाखों लोगों को भोजन, आवास एवं कपड़े का प्रबंध करने की इसके पास कोई योजना है ? यह स्पष्ट था कि बोस ने इन

चुनौतीपूर्ण प्रश्नों पर अधिक विचार नहीं किया था। उनका उत्तर था कि एक बार जब भारत को स्वतंत्रता मिल जाएगी तब सभी समस्याएं हल हो जाएंगी, साधारणतया यही सबका विचार था। साहा ने यह जानना चाहा, "परंतु कैसे ?"

बोस के पास कोई नपा-तुला जवाब नहीं था। जाहिर था कि लक्ष्य प्राप्ति अर्थात राजनैतिक स्वतंत्रता जीतने के बाद की बातों पर ब्यौरेवार विचार नहीं किया गया था। बोस ने साहा से पूछा कि उनका क्या करने का प्रस्ताव था। साहा ने समाचार पत्र की कतरन प्रस्तुत की जिसमें उत्तर प्रदेश के मंत्री का व्याख्यान छपा था और उनसे कहा कि यदि कांग्रेस के नेता भी इसी राय के हैं कि चरखा और दियासलाई की फैक्ट्री का अर्थ औद्योगिकीकरण में एक कदम आगे बढ़ाना है, तब सचमुच कांग्रेस देश पर भारी विपत्ति ढाहेगी।

बोस यह समझ गए कि साहा किस बात पर जोर दे रहे थे और साहा के राष्ट्रीय योजना समिति बनाने के प्रस्ताव से तुरंत सहमत हो गए। उन्होंने साहा को एक बैठक में आने का निमंत्रण दिया जिसे वे उसी वर्ष अक्तूबर में बुला रहे थे। साहा दिल्ली में एक दिन देर से पहुंचे और उन्होंने पाया कि राष्ट्रीय योजना समिति पहले ही गठित की जा चुकी है। सर एम. विश्वेश्वरैया को इसका सभापति बनने के लिए कहा गया था। साहा की समझ में यह कारगर नहीं प्रतीत हुआ, "क्योंकि जब तक कोई शीर्षस्थ कांग्रेसी सभापति नहीं बनाया जाता, योजना समिति के निर्णय केवल शैक्षणिक समझे जाएंगे और कांग्रेस की दृष्टि में उनका कोई महत्व नहीं होगा।" इसलिए विश्वेश्वरैया ने पद छोड़ दिया और बहुत समझाने-बुझाने के बाद नेहरू ने समिति का अध्यक्ष बनना स्वीकार किया। साहा टैगोर से यह कहने के लिए शांतिनिकेतन भी गए कि इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए गांधी जी को सहमत करें। बंबई के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो. के.वी. शाह महासचिव थे, वे बड़े उत्साही कार्यकर्ता थे। समिति ने तुरंत कार्य आरंभ कर दिया। मुख्य समिति के सदस्य के अतिरिक्त साहा ईंधन एवं शक्ति उपसमिति के सभापति थे और नदी नियंत्रण एवं सिंचाई उपसमिति के सदस्य। समिति की आखिरी बैठक मार्च 1939 में नई दिल्ली में हुई। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष डॉ. पट्टाभि सीतारमैया को दी गई अंतरिम रिपोर्ट 26 जिल्दों में थी। इस योजनाओं के कार्यान्वयन का प्रश्न राष्ट्रीय सरकार के लिए छोड़ दिया गया। विस्तृत रिपोर्ट तैयार करने के बाद समिति को भंग कर दिया गया।

इसके शीघ्र ही बाद नेहरू तथा अन्य कितने ही प्रभावशाली नेता गिरफ्तार कर लिए गए। राष्ट्रीय योजना बनाने का प्रथम चरण प्रकटतः खत्म हो गया था। परंतु वास्तव में बड़े पैमाने पर औद्योगिकीकरण के विचार नेहरू को जेल की पूरी अवधि में उद्वेलित करते रहे। यह The Discovery of India (भारत की खोज) नामक पुस्तक से, जो अहमदाबाद जेल में लिखी गई थी, उनके गंभीर चिंतन से

बिल्कुल स्पष्ट है। राष्ट्रीय योजना समिति ने किस प्रकार काम किया, उनका उपागम क्या था, बड़े व्यवसाय के प्रतिनिधि क्या चाहते थे और किस प्रकार उन लोगों ने अपने मतभेदों को दूर करके योजना[39] के लिए एक सर्वसम्मत आधार तैयार किया उनको इन सबके बारे में लिखा।

"कुटीर एवं लघु उद्योग के बड़े बड़े समर्थक भी मानते हैं कि कुछ हद तक वृहत पैमाने का उद्योग आवश्यक तथा अपरिहार्य है, वे लोग केवल इसे यथासंभव सीमित रखना चाहते हैं। सतही तरीके से फिर यह प्रश्न उत्पादन एवं अर्थव्यवस्था के दोनों रूपों पर जोर तथा उनके समायोजन का रह जाता है। इस बात को शायद ही कोई न माने कि आधुनिक युग के संदर्भ में अंतर्राष्ट्रीय अंतर्निभरता के ढांचे के अंतर्गत भी कोई देश राजनैतिक एवं आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र नहीं रह सकता जब तक कि वह अत्यंत औद्योगीकृत न हो और अपनी विद्युत शक्ति के स्रोतों का अधिकतम विकास न किये हो। न तो यह जीवन के उच्च स्तर को उपलब्ध और कायम रख सकता है और न गरीबी हटा सकता है जब तक यह जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में आधुनिक तकनीक का सहारा न ले। उद्योग में पिछड़ा देश बराबर विश्व के संतुलन को बिगाड़ता और अधिक विकसित देशों की आक्रामक भावना को प्रोत्साहित करता रहेगा। यदि यह अपनी राजनैतिक स्वतंत्रता को कायम भी रख सके तब भी वह नाममात्र को होगा और इसके आर्थिक नियंत्रण की प्रवृत्ति दूसरों के हाथ में चले जाने की होगी। यह नियंत्रण अपरिहार्य रूप से इसके अपने छोटे पैमाने की आर्थिक व्यवस्था को बिगाड़ेगी जिसे इससे इसके जीवन के अपने दृष्टिकोण से परिरक्षित रखने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार किसी देश की आर्थिक व्यवस्था को अधिकतर कुटी एवं लघु उद्योगों के आधार पर निर्माण करने के प्रयास का असफल होना निश्चित है। यह देश की मूल समस्याओं का न तो समाधान करेगा; न स्वतंत्रता कायम रख सकेगा, न तो यह विश्व के ढांचे में सिवाय उपनिवेशी उपांग के और तरह से फिट होगा।

"मैं ट्रेक्टरों और बड़ी मशीनों के पूर्णतः पक्ष में हूं और मुझे विश्वास है कि भारत का शीघ्र औद्योगिकीकरण भूमि पर दबाव दूर करने, गरीबी का सामना करने और जीवन स्तर को उच्च बनाने, सुरक्षा और अन्य अनेक कार्यो के लिए आवश्यक है। परंतु मुझे उतना ही इस बात का विश्वास है कि यदि हम औद्योगिकीकरण का पूरा लाभ उठाना चाहते हैं और इसके अनेक खतरों से बचना चाहते हैं तब अत्यंत सावधानी से योजना बनाना और समायोजन करना आवश्यक होगा। चीन तथा भारत की तरह जिन देशों में विकास रुक गया है और जिनकी अपनी शक्तिशाली परंपराएं हैं, उन सब देशों में आज योजना बनाना आवश्यक है।"

नेहरू का दिमाग किस प्रकार काम कर रहा था यह सोचा जा सकता है। साहा कि विचारधारा भी प्रकटतः यही थी। दो बड़े मस्तिष्कों में भविष्य के बारे

में समान दृष्टिकोण था। परंतु परिस्थितियों ने उन्हें अलग कर दिया। जब स्वतंत्र भारत में योजना आयोग अंत में बना तो यह कितनी बिडंबना है कि साहा को उसमें कोई स्थान नहीं मिला। सबसे विश्वसनीय कारण कांग्रेस के अंदर राष्ट्रीय योजना समिति की सिफारिशों के प्रति प्रबल विरोध हो सकता है। इस विरोध के समर्थक इतने शक्तिशाली थे कि नेहरू भी अपने प्रबल विश्वास के बावजूद 1950 तक कोई ठोस कदम नहीं उठा सके।

योजना आयोग ने अपना औद्योगिकीकरण का कार्यक्रम तीन वर्ष बाद 1953 में प्रस्तुत किया। यह मूल कार्यक्रम से बहुत भिन्न था। इसमें एक सुनिश्चित समाजवाद का कोई संकेत नहीं था। वर्गहीन समाज के निर्माण की कोई योजना नहीं थी। वास्तव में जो योजना इसमें प्रस्तुत की गई उसमें विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्तियों के हितों की बहुत अच्छी तरह रक्षा की गई थी। साहा पहले ही संसद सदस्य चुने जा चुके थे। जिन लोगों को उनके वृत्तिक के बारे में कम ज्ञान है वे राजनीति में उनके जाने की आलोचना करते हैं। संसद में अनेक नेताओं ने उन्हें भौतिकी की प्रयोगशाला में लौट जाने को कहा। पर यदि साहा के विचारों के विकास और उनके क्रियाकलाप के स्वरूप को देखा जाए तब यह स्पष्ट हो जाएगा कि साहा को अपनी वाणी प्रभावशाली बनाने के लिए संसद में जाने और विपक्ष में रहने के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नहीं था। उनके और कांग्रेस के दर्शन में मौलिक भेद था और इसीलिए उन्होंने कांग्रेस के टिकट को अपेक्षाकृत रुक्षता से अस्वीकार कर दिया।

उन्हें संसद में जाने के लिए प्रभुता से प्रेम ने नहीं प्रेरित किया बल्कि उसी सामाजिक ध्येय ने जिसके फलस्वरूप उन्होंने संस्थाओं का संगठन, भारतीय पंचांग में सुधार और नदी-घाटी परियोजना का अध्ययन किया। इनमें से अधिकांश बातें "हमारे भविष्य पर पुनः विचार" नामक पुस्तिका में प्रकाशित हुई हैं। उन्होंने प्रधानमंत्री से कहा, "वे अपने मस्तिष्क को राष्ट्रीय योजना के निर्माण में लगाएं केवल इसके लिए अपना नाम न दें, क्योंकि राष्ट्रीय जीवन के लिए यह कश्मीर एवं कोरिया[10] की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है।"

राष्ट्रीय योजना के निर्माण में व्यस्त होना ही उनकी संसद-सदस्यता की अति अल्प अवधि के लिए उत्तरदायी है।

7

संसद में साहा

साहा शायद राजनीति से अलग रहते और फिर भी राष्ट्र की सेवा करते यदि घटनाएं उनके अभीष्ट मार्ग पर चलतीं। उनका विचार था कि नदी परियोजनाएं उचित रीति से संचालित नहीं हो रही थीं और योजना बनाने में व्यापक गड़बड़ी थी। अब उनके प्रतिवादों को साइंस एंड कल्चर के उग्र संपादकीयों तक सीमित रखना संभव नहीं था। अपने प्रतिवाद को व्यक्त करने और सुनाने का एक ही मार्ग था–संसद का सभासदन। जनता को सूचित करने और सरकार को गलती सुधारने के लिए बाध्य करने का यही एक रास्ता था। सदा यह कहा जाता है कि वास्तविक लोकतंत्र भलीभांति जानकर विरोधी पक्ष पर फलता-फूलता है। शरतचन्द्र बोस जैसे मानव-स्तंभ ने प्रथम बार साहा के मन में इस विचार का बीज बोया। सुभाष चन्द्र के बड़े भाई शरतचन्द्र प्रथम अंतरिम मंत्रिमंडल के सदस्य थे। उन्होंने साहा को प्रथम संविधान सभा के चुनाव में खडा होने के लिए सहमत किया। एक प्रकार से उन्होंने केवल धक्का दिया जब कि इसके लिए पहले से आधार विद्यमान था। एक वैज्ञानिक के लिए इसका चुनाव करना कठिन था–परंतु साहा ने निर्णय लिया; वह ऐसे व्यक्ति नहीं थे जो प्रबल प्रतिपक्षी के सामने झुक जाएं।

कांग्रेस दल ने उनको स्वीकार करने योग्य उम्मीदवार नहीं समझा। वे खादी तथा चरखा की आलोचना बहुत खुलकर करते थे। उनके शब्दों में जो "पुराना दर्शन" था उसकी हंसी उड़ाने का वे कोई अवसर नहीं जाने देते थे। उनका नामांकन इस आधार पर रद्द कर दिया गया कि वे कांग्रेस के कार्यक्रम के प्रमुख मुद्दों के विरुद्ध थे। उनसे अपना कथन वापस लेने को भी कहा गया जिसे उन्होंने स्वभावतः अस्वीकार कर दिया। उन्होंने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कहा कि इस आदिम तकनीक पर आग्रह बड़ी ही पिछड़ी और अवैज्ञानिक बुद्धि का परिचय देना है। वे कांग्रेस का नामांकन प्राप्त करने के लिए उत्सुक नहीं थे क्योंकि उनको "आपके नारों" से अधिक विज्ञान प्रिय था।

1952 के चुनावों के समय तक शरतचन्द्र बोस जीवित नहीं थे परंतु उनकी

पत्नी विभावती बोस ने साहा से चुनाव लड़ने के लिए कहा। एक बार जब साहा निश्चय कर लेते कोई भी रुकावट उन्हें हटा नहीं सकती थी। वे वामपंथी दलों की सहायता प्राप्त कर स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में कलकत्ता उत्तर-पश्चिम निर्वाचन क्षेत्र से चुनाव लड़े। छात्रों एवं अध्यापकों के एक बड़े वर्ग ने चुनाव अभियान में भाग लिया। अप्रत्याशित क्षेत्रों से सहायता मिली। एक प्रमुख व्यापारी जो कांग्रेस द्वारा उनके विरोध में खड़ा किया गया था, चुनाव के बाद उनके प्रति अपना सम्मान प्रकट करने आया। साहा बड़े भारी मतों से जीते। 1952 से 1956 में अपनी मृत्युपर्यंत वे क्रियाशील सांसद रहे। यद्यपि उनका झुकाव वामपंथ की ओर था, पर वे कभी किसी वामपंथी दल में सम्मिलित नहीं हुए।

शायद संतुलन स्थापित करने के लिए साहा के घनिष्ठ मित्र एस.एन. बोस को 1952 में राज्य सभा का सदस्य नामांकित किया गया। परंतु बोस और साहा के स्वभावों में आकाश-पाताल का अंतर था और बोस की उपस्थिति से बिल्कुल ही कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

साहा संसद में प्रासंगिक प्रश्नों को उठाते और महत्वपूर्ण विषयों पर बहस की पहल करते। शब्दों को बिना तोड़-मरोड़ किए उन्होंने सरकार के अल्प निष्पादन पर प्रहार किया। चूंकि उनके अभियोग साधारणतया ठीक होते थे इसलिए वे कांग्रेसी सदस्यों को बहुधा विषम स्थिति में डाल देते। जब कोई युक्तियुक्त उत्तर नहीं मिलता तब कांग्रेस सदस्य सीधे साहा पर प्रहार करते और उन पर राजनीति के वर्जित क्षेत्र में दखल देने का अभियोग लगाते। निम्नलिखित उद्धरण उदाहरण[41] का काम देंगे–

के.डी. मालवीय : मंत्रालय के कागज पत्रों से मेरे मित्र को ज्ञात होगा कि एक न्यूक्लीय रिऐक्टर समूह पहले ही बनाया जा चुका है। मेघनाद साहा : यह 1948 में ही किया जाना चाहिए था। परमाणु ऊर्जा आयोग के पहले वक्तव्य को पढ़िए जिसमें कहा गया था कि हम लोगों के पास पांच वर्ष में न्यूक्लीय रिऐक्टर हो जाएगा यह 1948 की बात है। यह समूह क्यों पांच वर्ष बाद बनाया गया है। के.डी.मालवीय : मैं केवल आयोग के कार्यों को बता रहा हूं। यह अंदाजा लगाना डा. साहा का काम है कि इसका कार्य धीमी गीत से हो रहा है या अन्य प्रकार से। मुझे स्वयं मालूम है कि क्यों यह धीमी गति से चल रहा है और यही कारण है कि मैंने सुझाव दिया कि डा. साहा जैसे विख्यात वैज्ञानिक उस ज्ञान में योगदान करें जिसे हम प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं...। मुझे इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहना है कि डा. साहा मेरे पुराने प्रोफेसर हैं। मैं उनका पुराना छात्र रह चुका हूं। मुझे मालूम है कि वे बहुत हठी हैं। वे बहुत अच्छे और लाभदायक हैं जब वे हठ न करें, पर उतने अच्छे नहीं जब वे हठ से उतर आएं। महोदय, उनका राजनीति से चिपके रहना एक ऐसा ही अवसर है...।

10 मई 1954 को संसद में न्यूक्लीय ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग पर बहस की पहल डा. साहा द्वारा की गई थी। यह उनका बड़ा ही प्रिय विषय था। उन्होंने संयुक्त राष्ट्रसंघ में राष्ट्रपति आइज़ेनहावर के प्रस्ताव की चर्चा की जिसमें उन्होंने विखंडनीय पदार्थों को एक अंतर्राष्ट्रीय संग्रह बनाने का प्रस्ताव किया था। आइज़ेनहावर के वक्तव्य की शब्दावली विचित्र थी और वैज्ञानिक साहा ने इसके प्रकट अर्थ को समझा था। राजनीतिज्ञ के लिए वास्तव में संकेत स्पष्ट था जैसा कि हीरेन मुखर्जी ने साहा के बाद अपने भाषण में बताया। उन्होंने कहा कि आइज़ेनहावर के प्रस्ताव में संयुक्त राज्य द्वारा अपने स्टाक से केवल कुछ अंश इस संग्रह को देने की बात थी। "जो कुछ इसमें कहा गया है वह ठीक है, पर यह लक्ष्य के बिल्कुल निकट नहीं है, क्योंकि इसका आधार है संयुक्त राज्य अमेरिका की अपनी इच्छानुसार[12] जनसंहार के लिए परमाणु एवं अन्य शास्त्रों के प्रयोग का अधिकार।"

साहा भारत में न्यूक्लीय शक्ति के विकास के लिए प्रबल तर्क प्रस्तुत करने की चेष्टा कर रहे थे और इसे संपन्न करने में अन्य देश कितना धन व्यय कर रहे हैं, इसका उन्होंने यथेष्ट विवरण दिया। परमाणु ऊर्जा आयोग की स्थापना पहले ही हो चुकी थी। इससे ज्ञात होता था कि सरकार एक पूर्ण विकसित परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम रखने की आवश्यकता से अवगत थी। परंतु साहा न तो परमाणु ऊर्जा अधिनियम से संतुष्ट थे, जो "क्या करना चाहिए यह नहीं बताता बल्कि क्या नहीं करना चाहिए सिर्फ यही बताता है", और न इसकी कार्यवाई से। उन्होंने अपने वक्तव्यों एवं सिफारिशों को अनेक लेखों द्वारा साइंस एंड कल्चर[13] में प्रकाशित किया था। प्रारंभ में उनका भाभा से बड़ा ही मतभेद था। भाभा ने पहले ही नेहरू का विश्वास प्राप्त कर लिया था और यह स्पष्ट था कि नेहरू की दृष्टि में साहा की अपेक्षा भाभा की अधिक मान्यता थी। सर सी.वी. रामन के साथ उनके सुविख्यात झगड़े को कौन भूल सकता है जिसने स्थायी वर्ग-विरोधों को जन्म दिया जो आने वाले पीढ़ियों में भी चलते रहे। भाभा के साथ उनका मतभेद व्यक्तित्व के टकराव का एक और उदाहरण था। भाभा उद्योगपतियों के कुटुंब से आए थे, उनकी शिक्षा इंग्लैंड में हुई थी और वे वृहद वित्त के वातावरण में बड़े हुए थे। उनकी अभिवृत्ति और कार्य निष्पादन का तरीका विशेषकर कार्मिक प्रबंध साहा से बहुत भिन्न था। डी.एम. बोस[14] के शब्दों में, "भाभा को परमाणु ऊर्जा विभाग का सचिव, और परमाणु ऊर्जा आयोग का अध्यक्ष नियुक्त करने के प्रधानमंत्री के निर्णय से साहा को कुछ निराशा अवश्य हुई होगी। 1935 से नेहरू और साहा ने समान अभिरुचि के अनेक क्षेत्रों में सहयोग किया था। इसमें सुभाषचन्द्र बोस द्वारा निर्मित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की योजना समिति भी सम्मिलित थी जिसके अध्यक्ष थे नेहरू और साहा एक महत्वपूर्ण सदस्य। प्रधानमंत्री के कुछ बाद के निर्णयों के

फलस्वरूप बढ़ता हुआ मनमुटाव भी साहा द्वारा 1952 में राजनीति में भाग लेने के निर्णय का एक कारण हो सकता है। बाद में घटनाओं ने जो रूप लिया उससे इसमें संदेह नहीं रह जाता कि प्रधानमंत्री ने भाभा के जिम्मे परमाणु ऊर्जा के उपयोग की भारत की योजना को सौंप कर निस्संदेह उचित काम किया। भाभा ने भारत में परमाणु ऊर्जा के साथ अपने आपको एकदम आत्मसात कर दिया। साहा की अभिरुचि विविध एवं बहुत सी बातों में थी।''

इस बहस से अनेक रोचक बातें प्रकट हुई, परमाणु ऊर्जा का संविभाग प्रधानमंत्री नेहरू के अंतर्गत होने के कारण उन्होंने इसमें भाग लिया। वैज्ञानिक होने से साहा परमाणु स्रोतों के अंतर्राष्ट्रीय पूल (संग्रह) बनाए जाने की संभावना में बह गए और उन्होंने उन उपायों की सलाह दी जिससे भारत लाभान्वित हो सकता था। नेहरू इसे समझ गए और प्रस्ताव का बहुत ही तर्कसंगत विश्लेषण किया। तीस वर्ष बाद हम समझ सकते हैं कि वे कितने ठीक थे। अपने उत्तर के दौरान नेहरू ने कहा, ''संयुक्त राज्य अमेरिका पर विचार कीजिए, उसके पास अन्य विधियों से शक्ति के विपुल स्रोत हैं। परमाणु ऊर्जा के समान अतिरिक्त शक्ति के स्रोत से उनके लिए कोई विशेष बात नहीं होगी। यह सच है कि वे इसका उपयोग कर सकते हैं, पर यह बहुत महत्वपूर्ण नहीं है। यह शक्ति बिना मरणासन्न या शक्ति के भूखे देशों के लिए महत्वपूर्ण है जैसे भारतवर्ष या एशिया और अफ्रीका के अन्य देश। मैं कहता हूं कि जिन देशों के पास समुचित शक्ति के स्रोत हैं, उनके लिए परमाणु ऊर्जा पर रोक या प्रतिबंध लगाना हितकर होगा क्योंकि उन्हें उस शक्ति की आवश्यकता नहीं है। भारत जैसे देश के लिए इसे प्रतिबंधित करना या रोकना अहितकर होगा''।[45]

साहा परमाणु ऊर्जा आयोग और उसकी धीमी गति एवं गोपनीय कार्य प्रणाली के घोर आलोचक थे। वे चाहते थे कि अधिनियम बिल्कुल हटा दिया जाए और आयोग का पुनर्गठन विस्तृत आधार पर किया जाए।

नेहरू ने स्वीकार किया कि ''कार्य धीमी गति से हुआ होगा, उसे अधिक विस्तृत, द्रुततर होना चाहिए।'' उन्होंने इन बातों की ओर भी इंगित किया जो उनकी गति और कार्य की गति को निर्धारित करते थे। साहा की अपेक्षाकृत कठोर सलाह के संबंध में कि परमाणु ऊर्जा अधिनियम को हटा दिया जाए, उन्होंने कहा कि वे हमेशा रचनात्मक सलाह का स्वागत करते हैं और अधिनियम में परिवर्तन किया जा सकता है।

हाल ही में बलवंत भनेजा ने ''भारत में विज्ञान की नीति पर संसदीय प्रभाव'' का पुनरीक्षण किया है। अपने पुनरीक्षण में प्रथम भाग में वे लिखते[46] हैं, ''स्वतंत्रता के तुरंत बाद की अवधि में साहा सरकारी वैज्ञानिक संस्थानों के निर्माण और विस्तार के प्रति सरकार की अक्षुण्ण प्रतिबद्धता से निर्मोहित हो गए क्योंकि उनका विश्वास

था कि भारत में मौलिक अनुसंधान के लिए उपयुक्त स्थान विश्वविद्यालय हैं। डॉ. होमी भाभा की अध्यक्षता में 1948 में बनाए गए परमाणु ऊर्जा आयोग की स्थापना का उन्होंने विरोध किया। उनकी प्रागुक्ति थी कि भारतीय विश्वविद्यालयों में न्यूक्लीय विज्ञान के समुचित आधार के विद्यमान न होने पर यह प्रयास अंततोगत्वा देश में न्यूक्लीय अनुसंधान के विकास में बाधा उत्पन्न करेगा। विस्तार से विचार करने के बाद भनेजा ने निष्कर्ष निकाला, "भारतीय विज्ञान नेहरू के इस निर्णय की विजय का शिकार हुआ कि भारतीय विज्ञान के सभी अंडों को सरकारी टोकरी में रखा जाए। संभवतया साहा के विचार भारत के हितों के लिए अधिक उपयोगी होते।" साहा की आलोचना के विषय थे : विश्वविद्यालयी-शिक्षा, बहुउद्देशीय नदी परियोजनाएं और बड़े पैमाने पर औद्योगिकीकरण संबंधी सरकारी नीतियां। उनको प्रतीत हुआ कि इनमें से प्रत्येक क्षेत्र में ठोस नीति विकसित करने की कमी है जिसके कारण अव्यवस्था तथा सरकारी धन का अपव्यय हुआ है। उन्होंने नवनिर्मित राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं और विश्वविद्यालयों की कीमत पर उन्हें संरक्षण प्रदान करने के बारे में अपना संदेह व्यक्त किया। डॉ. भटनागर का उद्धरण देकर, जो इन प्रयोगशालाओं के संस्थापक थे, साहा ने संसद[47] में कहा :

"डॉ. भटनागर के अनुसार राष्ट्रीय प्रयोगशालाएं अपनी वांछनीय सेवाएं पूरी नहीं कर सकतीं जब तक कि विश्वविद्यालयों को बहुत अधिक अनुदान देकर उन्हें अपने कार्यों में नवजीवन फूंकने में सक्षम न बनाया जाए। मैं छात्रों की दो पीढ़ियों को प्रशिक्षित करता आ रहा हूं, हमारे युवा पुरुष किसी भी अन्य देश के युवाओं से कार्य के प्रति अपने उत्साह में कम नहीं हैं...। हमारे पास बहुत अच्छे बीज हैं। पर उनके लिए हमने कौन-सा क्षेत्र तैयार रखा है ? यह सूखा क्षेत्र है। हम विज्ञान और तकनीक के विद्यार्थियों को शिक्षा देते हैं। वे काम करना चाहते हैं...। परंतु जब वे प्रयोगशालाओं, में आते हैं तब हम उनकी बहुत सहायता नहीं कर सकते क्योंकि प्रयोगशालाओं, पुस्तकालयों एवं कार्यशालाओं में उपस्करों की कमी है और जो हैं वे पुरानी पड़ गई हैं। राष्ट्रीय प्रयोगशालाएं जिनका आपने निर्माण किया है हमारी जरूरतें पूरी नहीं कर सकतीं। आपने एक मंदिर बनाया है, परंतु इस बात का प्रावधान नहीं किया है कि उस मंदिर में योग्य उपासकों का बराबर आगमन होता रहे जिससे उसमें जीवन का संचार हो।"

साहा नदी-घाटी परियोजनाओं के विकास से विशेषकर मनोग्रस्त थे। उन्हें बाढ़ का अनुभव 1913 के पिछले दिनों से था जब दामोदर नदी में भारी बाढ़ आई थी। 1923 में उन्होंने पी.सी. रे के साथ उत्तर बंगाल की बाढ़ में राहत कर्मचारी के रूप में काम किया था। चौथे दशक के बाद उन्होंने अपने विश्लेषणात्मक मस्तिष्क को इस समस्या पर केंद्रित किया। बहते जल के पुंज को नियंत्रित कर उसे उपयोगी काम में लगाने की विधि जो दूसरे देशों ने अपनाई थी उस ओर

उन्होंने ध्यान दिया। उनके अंदर के भौतिकीविद ने इसे जलगतिकी की समस्या के रूप में देखा जबकि सामाजिक-विचारक एवं योजना बनाने वाले ने छद्मवेष में वरदान समझा। आखिर नदियों में संरक्षित इतनी भारी मात्रा में संचित शक्ति कम देशों के पास थी अथवा यह बात कि कितने देशों के पास इतनी बड़ी बड़ी नदियां थीं ? चीन के पास कुछ थीं, यद्यपि उस समय तक चीन बलवान राष्ट्र के रूप में नहीं उभरा था। अमेरिका में कोलोरेडो, टेनेसी और मिसिसिपी नदियां थीं और साहा को हमारी दामोदर और अमेरिका की टेनेसी में समानता दिखाई पड़ी। उनके प्रस्ताव पर डब्ल्यू.एल. बुरडुइन को जो टीवीए (टेनीसी वैली अथारिटी) के विशेपज्ञ थे, भारत सरकार ने नदी नियंत्रण के उपाय सुझाने के लिए आमंत्रित किया। श्री बुरडुइन ने साहा के 'साइंस एंड कल्चर' में लेख लिखे जिसमें टीवीए[18] के क्रियाकलापों का विवरण था।

1943 में एक और विध्वंसकारी बाढ़ आई थी। आप्लापी जल से कलकत्ता बाकी भारत से कट गया था। साहा और अनेक छात्रों ने इस बात को सचमुच गंभीरता से लिया। 'साइंस एंड कल्चर' ने नदी प्रशिक्षण के सभी पक्षों पर लेख प्रकाशित किया जिसमें सिंचाई, शक्ति, मृदा परिरक्षण और मिट्टी भर जाना सम्मिलित थे। ये लेख एन.के. बोस, कमलेश राय, समरसेन और अन्य कईयों द्वारा लिखे गए थे। जर्नल का ध्यान मुख्यरूप से पूर्वी क्षेत्र की नदियों पर केंद्रित था। जिन नदियों ने मृदा भराव के कारण अपना मार्ग बदल दिया था उनका ऐतिहासिक पुनरीक्षण हुआ था। कमलेश राय की सहायता से साहा ने साइंस कालेज के भवन की उत्तरी दीर्घा में दामोदर नदी का माडल बनाया था।

इन लेखों का ध्येय अंत में सार्थक हो गया। महाराजा बर्दवान के अंतर्गत दामोदर नदी बाढ़ जांच समिति गठित की गई जिसके साहा तथा अन्य विख्यात इंजीनियर सदस्य थे। उन्होंने एक बहुउद्देश्यीय नदी परियोजना बनाने का प्रस्ताव दिया। जब कांग्रेस सरकार सत्ता में आई तो दामोदर घाटी अधिनियम पारित किया गया। इसके पहले ही सरकार ने श्री बुरडुइन की सहायता मांगी थी और अनेक योजनाएं बनाई गई थीं। इन नदियों के नियंत्रण की परियोजनाएं थीं—महानदी (हीराकुड परियोजना), सतलुज (भाखरा-नांगल), सोन (रिहंद) और कोसी।

साहा जब संसद में चुने गए तब दामोदर घाटी निगम पहले से ही कार्य कर रहा था। इसके अतिरिक्त निगम के कार्य के पुनरीक्षण के लिए संसद द्वारा एक आकलन समिति नियुक्त की गई थी। उसकी रिपोर्ट द्वारा आश्चर्यचकित करने वाली बातें प्रकाश में आई और साहा ने बिना समय गंवाए उनको विचार[19] के लिए उठाया। उन्होंने कहा, "मुझे तो थोड़ा-सा ज्ञान अन्य नदी-घाटी परियोजनाओं का है उससे जान पड़ता है कि उनमें से किसी पर ठीक तरीके से काम नहीं हुआ है। दुर्भाग्यवश वहां के इंजीनियरों को कुछ नारे मिल गए हैं, जैसे—"हम लोग संसार

का सबसे ऊंचा बांध बनाएंगे।'' ठीक है, यह बहुत अच्छा नारा है, परंतु वैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह बहुत बुरा है। हिमालय अभिनव पर्वत है और वहां की अधिकांश चट्टानें बहुत कमजोर हैं। करोड़ों रुपए के अपव्यय के बाद पता चला है कि हिमालय की चट्टानों की नींव पर बहुत ऊंचे बांध नहीं निर्मित किए जा सकते। मेरे विचार से भाखरा-नांगल योजना पर इतना अधिक व्यय होने का यही मुख्य कारण है।''

साहा ने भाषण जारी रखते हुए कहा, ''जब कभी हम लोग इन नदी-घाटियों के विकास को आरंभ करते हैं, तब सदैव यही सोचते हैं कि अमेरिका ने जो कुछ कहा है वह ब्रह्मवाक्य है, पर यह ठीक नहीं है। मुझे समझ में नहीं आता कि क्यों हम हमेशा संयुक्त राज्य अमेरिका पर निर्भर रहें। हम लोगों को अपने विशेषज्ञों को सोवियत रूस में भेजना चाहिए ताकि वे मालूम करें कि वहां यह सब काम कैसे किया गया है। अंत में, मैं यह कहना चाहूंगा कि हमारे इजीनियर इन सब को सीख रहे हैं। संभवतया बहुत शीघ्र हमें विदेशी विशेषज्ञों की आवश्यकता नहीं रहेगी। मंत्री महोदय को देखना चाहिए कि भारतीय इंजीनियरों में से क्या कुछ ऐसे लोग है जो अपने अमेरिकी पर्यवेक्षकों से काम अपने हाथ में लेने के लिए आगे आए है। नदी-घाटी परियोजनाओं पर हमारी बड़ी आशा लगी है।''

हीराकुड बांध परियोजना के संदर्भ में उन्होंने योजना बनाने की अनेक त्रुटियों के साथ ही इसमें हुई अनियमितताओं की ओर भी संकेत किया। अंत में उन्होंने कहा, ''मेरे विचार से इन परियोजनाओं के लिए एक भी पैसा पारित करना बुद्धिमानी नहीं होगी जब तक कि प्रबंधात्मक मशीन का पूर्ण रूप से जीर्णोद्धार[50] न कर दिया जाए।''

साहा के संसद में आगमन के साथ साथ एक और महत्वपूर्ण कार्य हुआ—पंचांग में सुधार। अर्थात भारतीय कलेंडर (पंचांग) के सुधार में उनके अनुसंधान। ''साहा की स्कूल और बाद में कालेज में अत्यधिक रुचि गणित में थी। दूसरा विषय इतिहास उनकी रुचि का था'', यह उनके सहपाठी निखिल रंजन सेन ने लिखा है। प्राचीन भारतीय इतिहास के प्रति साहा के उत्साह और खगोल विज्ञान में उनके प्रेम का सुन्दर मिलन भारतीय कलेंडर के सुधार में हुआ। उन्होंने केवल भारत में ही नहीं अपितु अन्य प्राचीन-सभ्यताओं में भी काल गणना की पद्धति की समीक्षा गहराई से की। उन्होंने इस समस्या का अध्ययन उसी गहराई और विवरणों को ध्यान में रखते हुए किया जैसा उन्होंने सौर स्पेक्ट्रमों की व्याख्या पर काम करने में किया था। उन्होंने कलेंडर[51] सुधार पर विस्तार से लिखा। एशियाटिक सोसाइटी में उन्होंने 'शक संवत के प्रारंभ' पर भाषण दिया। इन सब प्रयासों के फलस्वरूप सी एस आई आर ने 1952 में एक कलेंडर सुधार समिति नियुक्त की।

किसी भी कलेंडर का उपयोग मोटे तौर पर दो कार्यो के लिए होता है—नागरिक एवं धार्मिक। भारत में पंचांगों का उपयोग धार्मिक उत्सवों, बच्चों के

जन्म, विवाहों, दस्तावेजों के काल निर्धारण आदि के हेतु तिथि एवं निश्चित समय बताने के लिए किया जाता है। कलेंडरों का आधार वैज्ञानिक निरीक्षण, ठीक ठीक गणितीय गणना होना चाहिए परंतु भारतीय पंचांग बनाने वाले बहुधा आधारभूत वैज्ञानिक सिद्धांतों की अवहेलना कर देते हैं।

सबसे महत्वपूर्ण त्रुटि वर्ष की लंबाई के बारे में हुई है। सूर्य सिद्धांत में वर्ष की लंबाई 365.258756 दिन दिया हुआ है जो वास्तविक सौर वर्ष से .01656 दिन बड़ा है। भारतीय पंचांग रचनाकार प्राचीन रिकार्डों को मानते आए हैं, फलस्वरूप 500 ई.स. से वर्ष 23.2 दिन आगे बढ़ गया है। भारतीय सौर वर्ष जिसका प्रारंभ बसंत विषुव (22मार्च) के बाद के दिन से होना चाहिए 13 या 14 अप्रैल से प्रारंभ होता है।

यूरोप में वर्ष की लंबाई 365.25 दिन जूलियस सीजर के राज्यकाल में स्वीकृत की गई। 1582 ई. तक 10 दिन की त्रुटि ज्ञात हुई। अतएव पोप ग्रेगरी XIII ने हुक्म दिया कि अक्तूबर 5 को अक्तूबर 15 घोषित किया जाए और लीप वर्ष की धारणा मानी जाए। सौभाग्य से पोप के प्रभुत्व की सारे कैथालिक यूरोप में मान्यता थी। दूसरी ओर, भारत में ऐसा कोई एक धार्मिक नेता नहीं था और इसलिए पंचांगों की बहुलता प्रचलित रही।

भारतीय कलेंडर में गड़बड़ अंकों की अपेक्षा अन्य कारणों से अधिक थी। अधिकांश धार्मिक उत्सवों को तिथि और नक्षत्र का उपयोग करके चंद्र कलेंडर से निर्धारित किया जाता है। मध्य युग में जब संचार की द्रुत विधियां नहीं थीं, इसका कोई महत्व नहीं था। प्रत्येक क्षेत्र का अपना कलेंडर था और एक की कमी से कोई समस्या नहीं उत्पन्न होती थी। परंतु बीसवीं शताब्दी में काल गणना की यह विधि पुरानी पड़ गई। किसी न किसी प्रकार का मानकीकरण आवश्यक था। परतु लोगों की क्षेत्रीय और स्थानीय भावनाओं का आदर करना भी जरूरी था। इस प्रकार जब 1952 में कलेंडर सुधार समिति की स्थापना हुई तब इसके सामने अपार कार्य था। इसके अंतर्गत देश के विभिन्न भागों में प्रयुक्त भिन्न भिन्न कलेंडरों का अध्ययन करके सरकार को वैज्ञानिक अध्ययन पर निर्भर और सारे देश में समान रूप से लागू किए जाने लायक यथार्थ कलेंडर का प्रस्ताव देना था।

तीस कलेंडर हमारे राजनैतिक और सांस्कृतिक इतिहास से विरासत में मिले थे और रिपोर्ट की प्रस्तावना में जैसा नेहरू ने लिखा है, "वे हमारे देश में विगत राजनैतिक विभाजन के प्रतीक हैं। एक अच्छे उद्देश्य को व्यक्त करना और निम्नांकित घोषणा करना एक बात थी और उसे व्यावहारिक रूप देना दूसरी। जब हम लोगों ने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है तब स्पष्टतः यह वांछनीय होगा कि हमारे नागरिक, सामाजिक और अन्य कार्यो में प्रयुक्त कलेंडर में कुछ समानता हो और इस समस्या को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से लिया जाना चाहिए।"

नेहरू को आशा थी कि हमारे वैज्ञानिक इसमें पथ प्रदर्शन करेंगे।

समिति के सभापति मेघनाद साहा थे। इसके अन्य सदस्य थे : ए.सी. बैनर्जी, के.के. दफ्तरी, जे.एस. करंडीकर, गोरख प्रसाद, आर.वी.वैद्य और एन.सी. लाहिरी। कलेंडर सुधार समिति की रिपोर्ट 1955 में प्रकाशित हुई।[32]

नागरिक कलेंडर के लिए संस्तुतियां दी गई थीं–

(1) एकीकृत राष्ट्रीय कलेंडर में शक संवत का प्रयोग होना चाहिए। उदाहरण के लिए 1954 ई. शक संवत के 1875-76 के समकक्ष होगा।

(2) वर्ष का आरंभ वसंत विषुव के अगले दिन से होना चाहिए

(3) सामान्य वर्ष में 365 दिन होंगे और लीप वर्ष में 366 दिन शक संवत में 78 जोड़ने के बाद यदि योग 4 से विभाजित हो जाए तब वह लीप वर्ष होगा। पर यदि योग 100 का गुणज हो तब यह लीप वर्ष तभी होगा जब 400से विभाजित हो जाए अन्यथा यह सामान्य वर्ष होगा।

(4) चैत्र वर्ष का प्रथम मास होगा। चैत्र से भाद्र तक प्रत्येक माह में 31 दिन होंगे और बाकी में 30 दिन।

उत्सवों की तिथियां उस ऋतु से जिनसे वे 1400 वर्ष पहले मनाई जाती थीं पहले ही 23 दिन हट गई हैं क्योंकि पंचांग बनाने वालों ने विषुव आयन का विचार नहीं किया। यद्यपि हटी हुई सभी अवधि को एक बार ही मिटा देना वांछनीय प्रतीत होता है पर यह ठीक समझा गया कि इस नियत अंतर को रहने दिया जाए और इसे आगे बढ़ने से रोका जाए। फलस्वरूप धार्मिक उत्सवों के मनाए जाने की वर्तमान परंपरा में अभी कोई अंतर नहीं होगा।

समय केंद्रीय स्थल ($82\frac{1}{2}^0$ पू. देशांतर और 23^0 K उत्तर अक्षांश) पर मध्यरात्रि से नागरिक कार्यो के लिए गिना जाएगा, पर धार्मिक कामों के लिए स्थानीय सूर्योदय की परंपरा मानी जा सकती है।

अनेक उन्नतिशील राज्यों में संशोधित कलेंडर का प्रयोग होने वाला। कलेंडर सुधार की संकल्पना अनेक विधाओं से क्रांतिकारी थी। स्पष्ट है कि इसमें नदी-नियंत्रण और विद्युत उत्पादन जैसी तकनीकी परियोजनाओं से अधिक गंभीर बातें निहित थीं। यह लोगों के सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक विश्वासों को सीधे प्रभावित करता था। यह वास्तव में सरकार का साहसपूर्ण कदम था और यह कहना भी उतना ही प्रासंगिक होगा कि इस बात को इतनी प्राथमिकता नहीं दी जाती यदि साहा जैसा मनुष्य इसकी मांग का सतत प्रयत्न नहीं करता। आखिर, बहुत अधिक उन्नतिशील समाजों में भी सामाजिक और धार्मिक कृत्यों में दखल का कट्टर विरोध हुआ है। ग्रेगोरी कलेंडर अपने अनियमित रूप और अवैज्ञानिक सिद्धांत के लिए अति प्रसिद्ध है फिर भी संयुक्त राष्ट संघ में साहा द्वारा प्रस्तावित अधिक विवेकपूर्ण विश्व कलेंडर बनाने के विचार को अस्वीकार कर दिया गया।

बहुधा आरोप लगाया जाता है कि हमारे देश के वैज्ञानिक अपने को संभ्रांत वर्ग का समझकर अलग थलग रहते हैं और उनमें वैज्ञानिकों के अंतर्राष्ट्रीय बंधुत्व के साथ आपसी संबंध की भावना रहती है बजाय इसके कि वे साधारण मनुष्य के कल्याण में योगदान देने की चिंता करें। मेघनाद साहा इस वर्ग के नहीं थे। वे वैज्ञानिक विचार के सिद्धांतों को दैनिक जीवन के अन्य क्षेत्रों से संबंधित करने में विश्वास रखते थे। वे ढोंगी नहीं थे। यदि उन्होंने अपने मां-बाप के मरणोपरांत हिंदू रीति के अनुसार श्राद्ध नहीं किया तो इसका कारण केवल यही था कि उन्हें इसमें कोई अर्थ नहीं दिखाई पड़ा। इस पृष्ठभूमि के प्रकाश में, भारतीय कलेंडर का सुधार एक वैज्ञानिक की अति महत्वपूर्ण उपलब्धि थी जिसके जीवन की मुख्य लालसा थी सविवेक चिंतन को समाज के प्रत्येक स्तर पर प्रयुक्त होते हुए देखना।

8
अंतिम वर्ष

न्यूक्लीय भौतिकी संस्थान की बढ़ोतरी का श्रेय केवल साहा के एकनिष्ठ प्रयास को है। आरंभ से अंत तक यह एक बाधा दौड़ थी। पर जब पहले से विद्यमान और अपेक्षाकृत पुराने संस्थान को आधुनिक ढंग के अनुरूप पुनः ढालने की समस्या आई तब ये बाधाएं और बढ़ गई, यह पुराना संस्थान इंडियन एसोसिएशन फार कल्टीवेशन आव साइंस (आई.ए.सी.एस.) था।

छात्र के रूप में साहा इस संस्था के बाहुबजार स्थित भवन में हुए लोकप्रिय व्याख्यानों को सुनने के लिए जाते थे। 1926 में वे इसके आजन्म सदस्य बन गए, यद्यपि सक्रिय भाग लेने की आदत ने जड़ नहीं पकडी थी।

जब तक रामन 1907 में यहां नहीं आए थे तब तक एसोसिएशन का प्रारंभिक कार्य वैज्ञानिक विषयों पर भाषण कराना और उनके साथ प्रयोग दिखलाना था। उनके साथ अनुसंधान की संकल्पना ने जन्म लिया। कार्यारंभ ध्वनिकी से करके रामन प्रकाशिकी पर काम करने लगे। प्रकाश के प्रकीर्णन पर उनके कार्य करने के फलस्वरूप उनको नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ। बाद में उन्होंने अपने अनुसंधान का क्षेत्र X-किरण और चुंबकत्व तक बढ़ा दिया। बहुत दिनों तक इंडियन एसोसिएशन रामन ओर उनके छात्रों से जाना जाता था, यद्यपि रामन कलकत्ता विश्वविद्यालय में पालित प्रोफेसर और भौतिकी विभाग के विभागाध्यक्ष थे। जब 1933 में रामन इंडियन इंस्टीट्यूट आव साइंस, बंगलौर के प्रथम भारतीय निदेशक बने तब मुख्यतया कलकत्ता के प्रख्यात नागरिक राजा बिहारीलाल मित्रा के दान के जरिए आई.ए.सी.एस. में एक प्रोफेसर का पद बनाया गया। प्रोफेसर के पद पर काम करने वाले व्यक्ति को अनुसंधान प्रयोगशालाओं, पुस्तकालय एवं कार्यशाला का प्रशासनिक भार दिया गया। इस पद पर डा. के.एस. कृष्णन की नियुक्ति की गई, जो ढाका में उस समय रीडर थे और नोबेल कार्य में रामन के सहकर्मी थे। प्रोफेसर रामन आई.ए.सी.एस की संचालन समिति के 1919 से 1933 तक सचिव थे और 1934 में इसके अध्यक्ष बन गए। इसके कारण बहुत-सा विवाद

उठ खड़ा हुआ। परिवर्तनों का डा. श्यामा प्रसाद सहित ट्रस्टियों ने विरोध किया। डा. श्यामा प्रसाद संचालन समिति को हटाने वालों के नेता बने। आपत्ति की मुख्य बातें थीं सदस्यता की शर्तें, सदस्यों के चुनाव में अध्यक्ष का एकाधिकार और अध्यक्ष का जीवनपर्यंत बने रहना। एक नई समिति बनाई गई जिसके अध्यक्ष बने सर नील रतन सरकार और सचिव प्रोफेसर जे.एन.मुखर्जी। इस स्थिति में श्यामा प्रसाद ने साहा को इस बात के लिए सहमत किया कि वे एसोसिएशन के कार्यो में सक्रिय रुचि लें। इस नई व्यवस्था में भी कृष्णन काम करते रहे। उन्होंने विषमदेशिक पदार्थों की चुंबकीय प्रवृत्ति को मापने की नई विधियों का विकास किया। उनके छात्रों ने अनुचुंबकीय पदार्थो के द्विअपवर्तन का अध्ययन किया जिससे क्रिस्टलीय पदार्थो की प्रकृति ज्ञात होती थी। अनुसंधान के इस क्षेत्र में उन्होंने बड़ी सफलता प्राप्त की और 1941 में वे रायल सोसाइटी के फेलो बन गए। 1942 में उन्होंने एसोसिएशन को छोड़ दिया और इलाहाबाद विश्वविद्यालय में साहा के चले जाने के बाद रिक्त प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष के पद पर काम करने लगे। 1939 के युद्ध ने कृष्णन के काम को प्रभावित किया और इसकी गति धीमी कर दी और उन्हें कलकत्ता छोड़ने के लिए प्रेरित किया। यदि वे वहां कुछ साल और रहते तो आई.ए.सी.एस. को एक और नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने का श्रेय मिलता क्योंकि वे अर्ध चालकों की खोज के अति निकट थे। कृष्णन के पश्चात डा. केदारेश्वर बैनर्जी महेन्द्रलाल सरकार प्रोफेसर बने। 1943 में डा. सुकुमार चन्द्र सरकार आई.ए.सी.एस. में अस्थायी रीडर बने। बाद में वे के. बैनर्जी के अनुवर्ती एम.एल.एस. प्रोफेसर नियुक्त हुए।

इस बीच एसोसिएशन के प्रबंध में साहा सक्रिय भूमिका निभा रहे थे। वे 1942 में इसके सचिव और 1946 में अध्यक्ष बन गए। बहुबजार स्थित भवन खराब दशा में था। इसके आंगन को सैकड़ों कबूतरों ने गंदा कर रखा था और इसकी साजसज्जा और मेज-कुर्सी को शताब्दी की मोड़ के बाद बदला नहीं गया था। रामन और कृष्णन की ख्याति से यह चल तो रहा था पर इसकी कार्यप्रणाली और भवन दोनों ही पुराने पड़ गए थे। घनी आबादी के क्षेत्र में इसका और विस्तार संभव नहीं था। साहा और प्रबंध समिति में उनके सहयोगियों ने आण्विक संरचनाओं के अध्ययन के लिए एक सक्रिय अनुसंधान केंद्र बनाने की महती योजना[53] बना रखी थी जहां भौतिकविद और रसायनज्ञ साथ साथ काम करते ताकि आई.ए.सी.एस में विद्यमान–किरण, रामन प्रभाव तथा चुंबकत्व की संपूर्ण निपुणता का उपयोग सैद्धांतिक भौतिकी एवं भौतिक रसायन के साथ किया जा सके। योजना में प्रस्ताव था कि सामान्य भौतिकी, किरण एवं चुंबकत्व, प्रकाशिकी, सैद्धांतिक भौतिकी, भौतिक रसायन, कार्बनिक एवं अकार्बनिक रसायन से अलग अलग विभाग हों और प्रत्येक विभाग में प्रोफेसर/रीडर और उनकी सहायता के लिए यथेष्ट

कर्मचारी और अन्य सुविधाएं हों। इस कार्य के लिए धन और भूमि प्राप्त करना बहुत बड़ा काम था। केंद्र और राज्य सरकारों ने साहा के प्रयास का अनुमोदन किया। यादवपुर विश्वविद्यालय के पश्चिम यादवपुर में चार हेक्टेयर जमीन ली गई और उस पर 360 वर्गमीटर भूमि क्षेत्रफल का एक नया भवन बनाया गया। एसोसिएशन अपने नए स्थान पर 1951 में स्थानांतरित हो गया। उस समय तक प्रबंध समिति के अध्यक्ष पद पर साहा का कार्यकाल समाप्त हो गया था और उनके स्थान पर जे.सी. घोष आ गए थे। 1947 में जब कार्य का विस्तार किया गया तब प्रोफेसर प्रियरंजन रे (कलकत्ता विश्वविद्यालय में रसायन के पालित प्रोफेसर) अवैतनिक निदेशक नियुक्त किए गए थे। डा.एस.एस. भटनागर ने साहा को इस बात के लिए तैयार किया कि वे प्रथम पूर्णकालिक निदेशक का पद ग्रहण करें। आखिर पुनर्गठित आई.ए.सी.एस. की उत्पत्ति उन्हीं के मस्तिष्क से हुई थी। अब वे इंडियन एसोसिएशन फार दि कल्टीवेशन आव साइंस के पूर्णकालिक निदेशक, इंस्टीट्यूट आव न्यूक्लियर फिजिक्स के अवैतनिक निदेशक और संसद के सदस्य भी थे। उनका दैनिक कार्यक्रम था प्रातः पांच बजे उठना, अध्ययन करना, नित्य शारीरिक व्यायाम करना और 9 बजे तक आई.ए.सी.एस. पहुंच जाना। वहां वे 12.30 से 1 बजे तक रहते, तत्पश्चात इंस्टीट्यूट आव न्यूक्लियर फिजिक्स के द्वार पर एक सूचना देखी जा सकती थी जिसमें लिखा था, "जो लोग प्रोफेसर साहा से अशैक्षणिक बातों के संबंध में मिलना चाहते हैं वे 5.00 बजे संध्या के बाद ही आएं।" आई.ए.सी.एस में उनके निदेशक रहने की अवधि में एसोसिएशन का एक नया रूप निखर आया। प्रधानमंत्री नेहरू 1952 में प्रयोगशाला देखने आए। प्रोफेसर लाइन्स पालिंग समेत बहुत से अन्य विख्यात वैज्ञानिक एसोसिएशन को देखने आए। 1954-59 की पंचवर्षीय योजना के साथ प्रकाशित एक पुस्तिका में अनुसंधान लेखों की एक सूची दी गई थी। इसमें 95 लेखों का सामान्य भौतिकी में, X-किरण तथा चुंबकत्व में (1933-53), 51 लेखों का प्रकाशिकी में (1948-53) 5 लेखों का सैद्धांतिक भौतिकी में (1951-53), 43 लेखों का भौतिक रसायन में (1948-53), 21 लेखों का कार्बनिक रसायन में और 5 लेखों का अकार्बनिक रसायन में (1948-53) उल्लेख है। इन सब शाखाओं में लेखों की संख्या के कारण नहीं बल्कि अनुसंधान की गुणवत्ता के कारण इंडियन एसोसिएशन को सारे संसार से मान्यता प्राप्त हुई।

1976 में इंडियन एसोसिएशन के शताब्दी समारोह का उद्घाटन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने किया। एक स्मारक ग्रंथ, जिसमें संस्थान के कार्यों का विवरण था, प्रकाशित किया गया।[51]

शरणार्थियों का पुनर्स्थापन

अपने अन्य कार्यो के बावजूद साहा ने अपने गांव के साथ संबंध बनाए रखा। इसलिए स्वतंत्रता के बाद जब पूर्वी बंगाल एक अन्य देश बन गया और विस्थापितों की बाढ़ आने लगी तब यह उनके लिए व्यक्तिगत विपत्ति के समान बन गई। ये स्वयं उनके ही आदमी थे, कुछ से तो उनका खून का रिश्ता था। विस्थापितों को सरकार से सहायता मिलती थी। पर कुछ वर्षो बाद ही पता चला कि सहायता पर्याप्त नहीं थी और जनता का रोष उभरने लगा। साहा आगे आए और स्वभावानुसार उसमें सक्रिय रूप से संलग्न हो गए।

पूर्वी बंगाल सहायता समिति के अध्यक्ष के रूप में आसाम के शिविरों को देखने गए ताकि सरकार की पुनर्वास नीति से क्रियान्वयन का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त हो सके। विस्थापितों के शिविरों में उन्होंने अनेक लोगों से बात की, जिससे उन्हें पता चला कि यद्यपि अपार धन का व्यय हुआ था, पर यह वास्तव में गृहहीन को उपलब्ध नहीं हुआ। आसाम, करीमगंज और हैलाकांटी के बीच स्थित दुबुलिया बस्ती (कालोनी) में 1100 कुटुंब पहाड़ी वनों में बसाए गए थे जहां जंगली हाथी और चीते स्वतंत्रतापूर्वक घूमते रहते थे। शिविरों तक न तो सड़क से पहुंचा जा सकता था न सरकार ने उन्हें घाटियों से संबंधित करने का प्रयास किया था। इसके अतिरिक्त कछार जिले के चाय बागानों की लगभग चालीस हजार हेक्टेयर कृषि भूमि को अपने पास इस तर्क से रख लिया था कि वे अपने श्रमिकों को भविष्य में वहां बसाएंगे। स्थानीय जमींदार स्थिति का लाभ उठाकर कृष्य भूमि को बढ़ोती के साथ लगान पर देते थे।

साहा को विश्वास हो गया कि पुनर्वास कार्यक्रम की असफलता का मूल कारण इसकी खंडशा प्रकृति थी। भाग्यहीन गृहहीनों को सामाजिक वातावरण के साथ एकीकृत करने की इच्छा नहीं थी। संसद के एक अन्य सदस्य त्रिदिव चौधरी के साथ दिए गए एक प्रेस वक्तव्य[55] में साहा ने प्रधानमंत्री से आग्रह किया कि योजना एवं विस्थापितों के पुनर्वास दोनों विभागों का एकीकरण करके स्वयं अपने ऊपर उनका भार ले लें। साहा ने कहा, "हम देश को याद दिला दें कि 1945 में जर्मनी के सामने इससे कहीं बड़ी समस्या थी क्योंकि उसके पास एक करोड़ पैंसठ लाख जर्मन विस्थापित थे। इसमें से पचीस लाख तो प्रथम दो वर्षों की गड़बड़ी में मर गए। पर बाकी का 1954 तक पूर्ण रूप से पुनर्वास किया जा चुका है, जैसा कि हममें से एक को हाल की यूरोप यात्रा में ज्ञात हुआ। जर्मनों की सफलता का श्रेय उनकी प्रारंभ से ही पूर्ण रोजगार की नीति है।"

राज्यों का पुनर्गठन

बाद के वर्षो में साहा के मस्तिष्क को बराबर मथने वाली समस्याओं में से सबसे अग्रिम स्थान राज्यों के पुनर्गठन की समस्या का था। जब वे इलाहाबाद में थे तब भी साहा ने अल्प संख्यकों की समस्या पर काफी विचार किया था, पर इसलिए नहीं कि वे हिन्दीभाषी उ.प्र. में बंग्लाभाषी मनुष्य थे, बल्कि इसलिए कि भारत जैसे बहुभाषी देश में प्रत्येक राज्य में इसका अपना अल्प संख्यक समूह होगा। उ.प्र. में उनका अपना अनुभव प्रसन्नतादायक था। "मैं 15 वर्ष से आगरा एवं अवध के इस संयुक्त प्रांत में रहता हूं पर मैं कह सकता हूं कि इस प्रांत में बंगाली प्रवासियों ने अब तक प्रांतीयता के कारण कभी भेदभाव का अनुभव नहीं किया है। बंगाली स्कूलों में बंगाली छात्रों को हिन्दी या उर्दू के स्थान पर बंग्ला के माध्यम से शिक्षा दी जाती है", उन्होंने 1939[26] में हिंदुस्तान स्टैंडर्ड में प्रकाशित एक लेख में लिखा।

उन्हे विश्वास था कि भारत की राष्ट्रीय एकता का सीधा संबंध इसकी विविधता से था। भारत में भौगोलिक और सास्कृतिक एकता तो है पर एक भाषा नहीं है जो स्विटजरलैंड और सोवियत रूस को छोड़कर अन्य स्थानों पर राष्ट्र का आधार होता है। साहा को सोवियत रूस की आधारभूत तार्किकता ने आकर्षित किया था जिससे उसने अपनी भाषागत समस्या का समाधान निकाला था। रूस में प्रत्येक राज्य भाषाई राज्य है जिसे अपनी भाषा का उपयोग करने की पूर्ण स्वतत्रता है, पर अल्पसंख्यक समूहों के हितों की अवहेलना करके नही। साहा के विचार से भारत के लिए अनुकरणीय यह आदर्श माडल था।

अपनी संसद सदस्यता के दौरान उन्होंने कांग्रेस दल को यह याद दिलाने का कोई अवसर जाने नहीं दिया कि उसने राज्यों को भाषा के आधार पर पुनर्गठित करने का वचन दिया था। संसद में अपने भाषणों द्वारा और जनसंपर्क माध्यमों[27] में लेखों के प्रकाशन से उन्होंने उन महत्वपूर्ण क्षेत्रों की ओर इंगित किया जो कांग्रेस द्वारा उपेक्षित रह गए थे। वे विशेष रूप से तब क्षुब्ध हो उठे जब जमशेदपुर समेत बिहार के कुछ भाग पश्चिम बगाल में शामिल नहीं किए गए। ग्रीयरसन के भाषाई सर्वेक्षण से विस्तृत उद्धरण देकर उन्होंने बार बार थलभूम तथा बंगाल-बिहार के अन्य सीमांत क्षेत्रों के विभिन्न भाषाई समूहों के वितरण की ओर ध्यान आकर्षित किया। उनको इस बात का दुख था कि बंगाल के साथ घोर अन्याय हुआ है और दल ने स्वयं अपनी नीति का उल्लंघन किया है।

फिर क्या आश्चर्य कि जब बंगाल-बिहार के संभावित संलयन का प्रश्न उठा तो वे इसके विरोध में उठ खड़े हुए। उन्होंने जोरदार शब्दों में कहा कि मातृभाषा का प्रयोग प्रत्येक नागरिक का मूल अधिकार था और उस अधिकार को न देना

लोकतंत्रीय सिद्धांतों के आधार के विरुद्ध था। वास्तव में इस बात पर साहा इतने विचलित हो उठे थे कि इससे उनका अंत आने में शीघ्रता हो गई होगी। इस प्रश्न पर विचार-विमर्श करने के लिए अपनी दिल्ली की अंतिम यात्रा में साहा का मस्तिष्क बड़ा ही क्षुब्ध था। उनका रक्तचाप पहले ही अति उच्च था और संभवतया इस कारण उनकी दशा और बिगड़ गई तथा संसद भवन की ओर ज.ते समय उन पर प्राणघातक दौरा पड़ा।

16 फरवरी 1956 को दिल्ली में डा.जे.सी. घोष से योजना भवन के दफ्तर में साहा को मिलना था। टैक्सी के चालक को किराया देकर अपनी बगल में कुछ फाइलों को दबाए हुए वे राष्ट्रपति भवन की ओर जाने के लिए मुड़े। जब वे द्वार से कुछ ही गज की दूरी पर थे, पृथ्वी पर गिर पड़े। उनको शीघ्रतापूर्वक निकटस्थ विलिंग्डन अस्पताल में ले जाया गया जहां डाक्टरों ने उन्हें मृत घोषित कर दिया।

उनके शव को चार्टर किए गए वायुयान द्वारा कलकत्ता ले जाया गया। पश्चिम बंगाल के तीन प्रमुख संसद सदस्य, भूपेश गुप्ता, रेणु चक्रवर्ती और सुरेन्द्र मोहन घोष शव के साथ कलकत्ता गए।

वह सरस्वती पूजा का दिन था। कलकत्ता में सभी समारोह रुक गए और हजारों लोगों की भीड़ सड़कों पर उस मनुष्य को यथोचित विदाई देने के लिए एकत्र हो गई जो साहसपूर्ण कार्यो के योद्धा के रूप में जीवित रहे और मरे।

9

व्यक्ति एवं उसके विश्वास

हम लोगों ने उन प्रारंभिक कठिनाइयों की चर्चा की है, जिन्हें सिवरातली के लड़के को पार करनी पड़ी और जिसका संघर्ष गांव से बाहर आकर ढाका में पैर रखते ही समाप्त हो गया। मासिक भत्ते के ग्यारह रुपयों का अंश वह स्वयं अर्जित करता था बाकी उसके भाई और बिरादरी द्वारा पूरा किया जाता था। क्रांतिक अवस्था में उस महत्वपूर्ण सहायता ने मेघनाद को अपनी योग्यता सिद्ध करने के लिए उकसाया। उस विवेकशील लड़के ने कठिन परिश्रम किया; जितनी ही चुनौती भरा काम होता उतना ही घोर इसका प्रयास होता। उसने समझ लिया कि उज्जवल शैक्षणिक वृत्तिक अच्छे जीवन का पासपोर्ट था और इस विश्वास के साथ वह आगे ही बढ़ता गया, कभी पीछे नहीं लौटा।

परंतु उस महत्वाकांक्षी युवक का जीवन कभी फूलों की सेज नहीं बना। 1917 तक वह धनाभाव के कारण इस स्थिति में नहीं था कि एक महत्वपूर्ण अनुसंधान लेख को संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के एक प्रामाणिक जर्नल में भेज सके। इसका बड़ा दूरगामी परिणाम हुआ। उन्हीं के शब्दों में–

"1917 के अंत तक मैंने एक लंबा निबंध 'वरणात्मक विकिरण दाब' पर लिखा था जिसमें वरणात्मक रूप से परमाणुओं पर कार्य करने और सौर परमाणुओं पर गुरुत्व प्रभाव की प्रति पूर्ति करने को विकिरण दाब की भूमिका के सिद्धांत का विशिष्ट विवेचन था। यह लेख प्रकाशन के लिए एस्ट्रोफिजिकल जर्नल को भेजा गया था, परंतु संपादकों ने उत्तर में लिखा कि लेख अपेक्षाकृत लंबा था। अतएव इसका प्रकाशन तभी किया जा सकता था जब मुद्रण के व्यय का एक भाग, जो डालरों के तीन अंकों में आता था, मैं देता। इसे संपन्न करने के लिए मेरी बड़ी-बलवती इच्छा थी परंतु इसके धन की व्यवस्था करना मेरे लिए संभव नहीं था क्योंकि तनखाह कम थी (150 पौंड प्रतिवर्ष) और मुझे अपने वृद्ध माता-पिता और एक छोटे भाई का, जो पढ़ता था, इसी में से खर्च वहन करना पड़ता था। अतएव, एस्ट्रोफिजिकल जर्नल के संपादकों को मैंने लिख दिया कि मुद्रण का व्यय देने में

असमर्थ था। परंतु न तो मैंने लेख के प्रकाशन के संबंध में कुछ सुना और न ही उसे मुझे लौटाया गया। वर्षों बाद 1936 में जब मैं यर्किज़ वेधशाला को देखने गया था तब डा. मार्गन ने उस लेख की हस्तलिखित प्रति दिखाई जो इस समय तक भी वहां रखा हुआ था। मैंने एक छोटी टिप्पणी एस्ट्रोफिजिकल जर्नल जिल्द 50,220 (1919) में प्रकाशित कराई और कुछ समय बाद मूल लेख वरणात्मक विकिरण दाब और सौर वायुमंडल की समस्याओं पर अपने विश्वविद्यालय के जर्नल में प्रकाशन के लिए भेज दिया, जिसकी औसत बिक्री इतनी भी नहीं थी कि शब्दों में व्यक्त की जा सके (विज्ञान विभाग का जर्नल, कलकत्ता विश्वविद्यालय, 1919)। मैं इन बातों का जिक्र कर रहा हूं क्योंकि मैं वरणात्मक विकिरण दाब के सिद्धान्त का मूल प्रतिपादक होने का दावा कर सकता हूं। यद्यपि ऊपर लिखित परिस्थितियों के कारण मैंने इस विचार का अनुसरण करके इसे विकसित नहीं किया। ऐसा प्रतीत होता है कि, ई.ए. मिल ने नेचर, 107, 488 (1921) में मेरी एक टिप्पणी को पढ़ा क्योंकि इस विषय पर अपने प्रथम लेख उत्तेजित कैल्शियम परमाणुओं के औसत का खगोल भौतिकी निर्धारण में जो Month Nob R Astro Sec Vol 24 में प्रकाशित हुआ था, की पाद टिप्पणी के अन्तर्गत मेरे योगदान का जिक्र किया यद्यपि इसे किसी ने देखा नहीं। उनके वास्तविक शब्द थे "इन पैराग्राफों में उन विचारों को विकसित किया गया है जिसे मूलत एम.एन. साहा द्वारा रखा गया था।"

यद्यपि साहा को अपने सामने वाली अन्य चुनौतियों का भी सामना करना पड़ा—कलकत्ता छोड़ने का चुनाव, इलाहाबाद में एक प्रयोगशाला का निर्माण, अन्य संगठन संबंधी तथा राष्ट्रीय प्रश्न—परन्तु बचपन में जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा उनकी तुलना में वे नगण्य थे। साहा का वास्तविक संघर्ष बाहरी बलों से उतना नहीं था जितना स्वयं से। उनको अपनी पृष्ठभूमि से ऊपर उठने के लिए कठिन युद्ध करना पड़ा। वह पृष्ठभूमि जिसके द्वारा उनके अधिकांश व्यक्तित्व का निर्माण हुआ। वह इसके ऊपर उठे, फिर भी विचित्र बात है कि अपने चरित्र में इसके प्रभाव से पूर्णतः बच नहीं सके।

सिवरातली के उनके गृह में एक पूजा का कमरा था और कुटुंब सभी परंपरागत धार्मिक कृत्यों को मनाता था। फिर भी साहा धार्मिक अनुष्ठानों के प्रति विचित्र रूप से असहिष्णु थे और धर्म के प्रति अश्रद्धा के मात्र से उनका सम दृष्टिकोण विरंजित हो उठा। वह हिंदू रूढ़ियों की गहराई नहीं जान सके और उच्च जाति के हिंदुओं के भेदभाव के फलस्वरूप अपना निजी सुरक्षा तंत्र बना लिया। यद्यपि भेदभाव ने उन्हें बहुत अधिक प्रभावित नहीं किया कम से कम, उनके वृत्तिक में, फिर भी उनका मानसिक घाव अदृश्य तथा सम्भवतया अचेतन रूप में चुनौती बना रहा जिसने न तो कभी उनको शान्ति में रहने दिया और न किसी काम को

शांति से करने दिया।

उनमें नफासत बिल्कुल नहीं थी, और इस बात में वे अपने विख्यात मित्र, सत्येन्द्र नाथ बोस से एकदम भिन्न थे। साहा इतने एकनिष्ठ मन वाले व्यक्ति थे कि वे संगीत, आदि चीजों पर समय का अपव्यय नहीं कर सकते थे। संगीत की सराहना योग्य उनकी श्रवण शक्ति भी नहीं थी। अपने ज्येष्ठ पुत्र के विवाह संबंधी स्वागत के अवसर पर उन्होंने दीपाली नाग को उपस्थित अतिथियों के समक्ष गाने के लिए कह कर उलझन में डाल दिया। दीपाली नाग उनके छात्र बी.डी. नाग की पत्नी थीं और शास्त्रीय संगीतज्ञ के रूप में पहले से ही विख्यात थीं। बंगाली विवाह में स्वागत समारोह बड़ा ही अव्यवस्थित होता है और शास्त्रीय गायन के लिए एकदम अनुपयुक्त स्थान। परन्तु साहा ने उन्हें गाने के लिए आग्रह किया और उन्हें कहना मानने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं था।

खेल-कूद में रुचि रखने वालों के प्रति भी उनकी अभिवृत्ति इतनी ही परेशान करने वाली थी। उन्हें यह कभी समझ में नहीं आया कि क्रिकेट-मैच पर लोग क्यों इतना हो-हल्ला मचाते हैं। एक बार उनके कुछ छात्र एक महत्वपूर्ण क्रिकेट मैच को देखने के लिए खिसक गए। साहा को उन लोगों की अनुपस्थिति ज्ञात हो गई। बाहर दीर्घा में तुरन्त भगोड़ों ने माइक्रोफोन पर अपने नाम की पुकार सुनी जिसमें उन्हें प्रयोगशाला में शीघ्र लौटने के लिए कहा गया था। बाद में उन्हें साहा के रोष का सामना करना पड़ा। "यदि तुम लोग स्वयं खेल में भाग लेते तो कोई बात भी होती पर सिर्फ देखने के लिए...मैं तो इसे बड़ी मूर्खतापूर्ण बात समझता हूं।" वे शारीरिक स्वस्थता में विश्वास करते थे और जब कभी दूर तक टहलने नहीं जाते तो प्रत्येक दिन प्रात ताल के किनारे हल्की चाल से दौड़ लगाते। किसी समय जब यह संभव नहीं होता तो वे मालिश करने वाले को घर पर बुलाकर मालिश कराते।

एक बार सोवियत रूस से लौटकर आने पर साहा ने अपने छात्रों से यह पूछकर आश्चर्यचकित कर दिया कि क्या वे किसी नर्गिस नाम के व्यक्ति को जानते थे। उस समय हिंदी फिल्म 'आवारा' रूस के भरे हुए सिनेमा घरों में चल रही थीं और प्रत्येक आदमी ने हिंदी की फिल्म तारिका के बारे में उनसे पूछा। अपने रंग के पक्के, साहा उत्तर देने में असमर्थ थे। भारतीय फिल्म उद्योग से उनका संपर्क उनके विद्यार्थी ज्ञान मुखर्जी तक ही सीमित था जिसकी फिल्मों का उन्होंने मुहूर्त किया था।

उनमें वस्त्र पहनने का भी सलीका नहीं था और उन्हें दो साइज छोटे कोट में बेपरवाही से घूमते हुए देखा जा सकता था।

उनके व्यवहार में ऊपरी चमक-दमक थी, पर हृदय की कोमलता नहीं छिपती थी। अपने कम सुविधा वाले संबंधियों के प्रति उनमें कोमल भाव था, विशेषकर

उन लोगों के लिए जिन्होंने उनके बचपन में सहायता की थी। अपने जरूरतमंद छात्रों और महत्वाकांक्षी युवकों के प्रति भी उन्हें कम सोच नहीं था। वे बहुत से लोगों को मनीआर्डर भेजते थे, पर ईश्वर ही जानता है कि ये लोग कौन थे। और इस बात की जानकारी उनके घर वालों को भी नहीं थी। वे सिमुलिया गांव के डाक्टर की पत्नी को, जिन्होंने अपने घर में उन्हें ठहरने दिया था, नियमित रूप से मनीआर्डर भेजते थे। वे अपने बड़े भाई की सहायता करते थे और उन्हें छपरा के एक चीनी मिल में खजांची की नौकरी दिलाने में सहायक बने। भारत के विभाजन के बाद साहा के अनेक संबंधी पहले के पूर्वी बंगाल से इस पार आ गए और उनके कलकत्ता के घर में उनके कुटुंब के साथ ठहर गए। इलाहाबाद का उनका मकान सदैव अतिथियों, संबंधियों और छात्रों से भी भरा रहता जो काफी दिनों तक वहां ठहरे रहते।

उनके तीन पुत्र और चार कन्याएं थीं। साहा की सात संतानों में से केवल दो ने इतिहास और अंग्रेजी लिया बाकी सब ने शुद्ध या अनुप्रयुक्त विज्ञानों को ले लिया।

उनके सबसे बड़े पुत्र अजित का जन्म 1922 में हुआ। वह इलाहाबाद के स्कूल में पढ़ने लगा और मैट्रिकुलेशन में तृतीय स्थान पाया। इंटरमिडियेट साइंस पूरा करने के बाद वह कुटुंब के साथ कलकत्ता चला गया। अपने पिता के समान उसने गणित में स्नातक किया परंतु स्नातकोत्तर में उसने बदल कर भौतिकी ले लिया जिसमें न्यूक्लीय का एक विशेष पर्चा था। उसने बीटा सक्रियता पर कार्य लिया। अजित साहा के शोध प्रबंध की जांच ईरीन जोलियो क्यूरी, मैक्सबार्न तथा इलिस ने की। वे साहा संस्थान में भौतिकी के वरिष्ट प्रोफेसर रहे और विभिन्न राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं से आकर्षक प्रस्ताव मिलने पर भी साहा संस्था में रहना अधिक पसंद किया।

साहा का दूसरा पुत्र रंजीत, जिसका जन्म 1923 में हुआ था इंजीनियरी में स्नातकोत्तर उपाधि लने के बाद बंबई चला गया। जहां वह टाटा जल वैद्युत संयंत्र में वरिष्ठ अधिशासी अधिकारी के पद पर कार्यरत रहा।

1933 में उत्पन्न प्रसेनजित ने पैंसिलवेनिया स्टेट विश्वविद्यालय से भू-रसायन में डाक्टर की उपाधि प्राप्त की। वह सैन्ट्रल ग्लास एवं सेरामिक रिसर्च इंस्टीट्यूट, कलकत्ता में सहायक निदेशक के पद पर कार्यरत रहा।

उनकी चारों पुत्रियां भली भांति शिक्षित और विवाहित हैं। साहा के लड़कों ने शैक्षिक एवं व्यावसायिक दोनों ही वृत्तिकों में विलक्षण उन्नति की; यद्यपि सबसे बड़े अजित ने ही अपने पिता के पदचिह्नों पर चलना पसंद किया। भारतीय विज्ञान के इतिहास में संभवतया मेघनाद साहा तथा अजित साहा केवल यही एक उदाहरण है जब पिता और पुत्र दोनों ही भारतीय विज्ञान कांग्रेस के अध्यक्ष बने—पिता 1934

में और पुत्र 1980 में।

साहा का घर-बार सभी छात्रों, संबंधियों और गांव के लोगों के लिए खुला रहता और उनके बच्चों ने सभी चीजों को अन्य लोगों के साथ बांट कर उपयोग करना सीख लिया। सब प्रकार से संपन्न रहते हुए भी साहा के रहने का ढंग साधारण था—यह गुण उनके बच्चों को भी उनसे विरासत में मिला।

साहा अपने काम में तल्लीन रहते थे यह स्वाभाविक था कि बच्चे मां के पास अधिक रहते। राधा रानी साहा अपनी बड़ी गृहस्थी को प्यार और कुशलता से चलाती थीं और बच्चों की शिक्षा की देखभाल करती थीं। राधा रानी को विधिवत शिक्षा नहीं मिली थी—परंतु वे पढ़ने अवश्य गई थीं। जब साहा 1920 में यूरोप की यात्रा पर चले गए तब राधा रानी मैंमनसिंह में उनकी ससुराल वालों के पास चली गई। उन लोगों ने उन्हें विद्यामयी बालिका विद्यालय में पढ़ने के लिए डाल दिया। कलकत्ता आते ही वे विस्तृत गृहस्थी की देखभाल में इतनी व्यस्त हो गई कि वे विधिवत शिक्षा के बारे में सोच भी नहीं सकीं। पर उनका मस्तिष्क ग्रहणशील था और उन्होंने अपने पति की विविध बातों में रुचि होने से बहुत कुछ सीखा।

साहा के अधिकांश विद्यार्थी उनकी पत्नी की सहृदयता को याद करते हैं। वे उनको अपने ही बच्चों के समान समझती थीं। कलकत्ता में जैसे जैसे उनके छात्रों और अनुसंधानकर्ताओं की परिधि बढ़ती गई उनको एक ही शिकायत थी कि प्रत्येक छात्र का नाम याद रखना उनके लिए कठिन हो रहा था। वे नेहरू और विज्ञान के विदेशी महारथियों के भोज की व्यवस्था करतीं। उनके शिष्टाचार में अपूर्व लावण्य और आकर्षण था। वे साहा के मरणोपरांत लगभग बीस वर्ष तक जीवित रहीं। उनकी मृत्यु 1980 में हुई। मेघनाद साहा का सौभाग्य था कि उनकी जैसी जीवन संगिनी मिली।

यह सुखी परिवार था। अनेक कार्यों में व्यस्त रहने पर भी साहा अपने बच्चों की शिक्षा की देखभाल के लिए समय निकाल लेते यद्यपि यह बड़े मोटे और साधारण तरीके से होता। अनेक महापुरुष अपने कुटंब के प्रति उदासीन रहते हैं और प्रतिभावानों और उनके बच्चों के बीच संप्रेषण में बाधा पड़ जाती है। परंतु साहा बहुधा उनसे असहमत होते पर वे कभी मन में रोष नहीं रखते—दूसरे ही दिन किसी शैक्षिक रुचि की बात पर खुले मन से इस प्रकार चर्चा करते कि जैसे पहले कुछ हुआ ही न हो और अवज्ञाकारी बच्चे को आश्चर्यचकित और हर्षित कर देते।

साहा को अपने सामाजिक दर्शन पर अपने बच्चों के कालेज के मित्रों से विचार-विमर्श करने में आनंद मिलता। बाहरी देशों की अपनी एक यात्रा से लौटते हुए वे जार्ज बर्नाड शा द्वारा लिखित पुस्तकों का एक पूरा 'सेट' ले आए। क्यों वे नाटककार शा की ओर आकर्षित हुए, इसे आसानी से समझा जा सकता है।

इसलिए कि शा केवल सामाजिक संदेश के संप्रेषण के ही लिए लिखते थे। साहित्य का अध्ययन करनेवाली अपनी पुत्री से उन्होंने कहा, "इनको पढ़ो, और देखो कि क्या समस्याओं के बारे में तुम भी उन्हीं के समान लिख सकती हो। यह मांग बहुत बड़ी थी। परंतु वह इसी प्रकार के मनुष्य थे—यदि वे किसी बात से प्रभावित हो जाते तो उनके लिए वे अवश्य कुछ न कुछ करते। उनकी पुत्री के भाग्य से नाटक लिखने की अपनी आशा को वे भूल गए। परंतु उन्हें यह कहते हुए सुनकर आश्चर्य नहीं होता, "यदि शा इनको लिख सकते हैं तो तुम क्यों नहीं लिख सकती हो ?"

साहा के सामाजिक न्याय में विश्वास का कार्यान्वयन परिवार की छोटी छोटी बातों में भी होता। यदि कोई नौकर को नौकर कहकर बुलाता तो उन्हें चिढ़ होती। वे कहते, "क्या उसका कोई नाम नहीं है ?" वे सदैव निजी प्रयास को प्रोत्साहन देते। एक भली भांति स्थापित बेकरी ने साहा से धन लेकर कार्य आरंभ किया। वास्तव में, वे खड़े होकर पहली पाव रोटी का सेकना देखते रहे। यह किसी को ज्ञात नहीं होगा कि साहा के चुनाव अभियान में इसी बेकरी ने कार्यकर्ताओं को केक और पेस्ट्री दिया। जब साहा के स्वयंसेवक मूल्य चुकाने गए तो उन्होंने रुपया लेने से मना कर दिया और इस रहस्य का उद्घाटन किया कि बेकरी का अस्तित्व साहा की ही उदारता से था और उन्होंने इस प्रकार अपनी अल्प कृतज्ञता का परिचय दिया था।

साहा के पास जब कुछ समय होता तो वे अपने बच्चों को या तो स्वयं पढ़कर सुनाते या उनसे पढ़ने के लिए कहते। सीखने की उनकी अद्भुत लालसा ने उनके बच्चों को भी प्रवाहित किया और वे संकीर्ण विचारों वाले व्यक्ति के बनने से बच गए। इसका श्रेय विशेषकर उनके पिता के प्रभाव को है।

उनके इतिहास तथा पुरातत्व के ज्ञान पर एक पुराण लिखा जा सकता है। जब वैज्ञानिक पी.ए.एम. डिराक और उनकी पत्नी चौथे दशक के प्रथम चरण में कलकत्ता आए तो साहा का एक छात्र उन्हें विक्टोरिया मेमोरियल दिखाने ले गया। वैज्ञानिक को साहा की एथेंस यात्रा और वे अविस्मरणीय घड़ियां याद आ गई जो उन्होंने स्मारकों के पास उनके साथ बिताई थीं।

वैज्ञानिक के रूप में साहा की सफलता का कारण उनके जिज्ञासु मस्तिष्क और विचारों की स्पष्टता थी। इसका बहुत कुछ श्रेय गणित में उनकी प्रारंभिक शिक्षा का था। जब तक वे किसी विषय के पक्ष और विपक्ष का अध्ययन नहीं कर लेते तब तक कभी उस पर अपनी राय नहीं देते। अनेक बार लोगों को साहा के बारे में भ्रम हो जाता था क्योंकि वे जैसा देखते वैसा ही कहते थे और दिखावा तथा बहाना सहन नहीं कर सकते थे। जो मनुष्य स्पष्टवादी होता है और सत्य, सत्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहना चाहता, वह बहुत कम लोकप्रिय होता है। इस अर्थ में साहा, लोकप्रिय वैज्ञानिक की छवि के अनुरूप कभी नहीं थे। अपने

समय में साहा पर बहुधा यह आरोप लगाया जाता था कि वे हिंदू दर्शन और वेदों के ज्ञान के बारे में अपना मतांतर व्यक्त करते रहते हैं। एक बड़ी साधारण भूल यह समझना है कि जो आधुनिक वैज्ञानिक विचारों का निष्णात ज्ञाता होता है, वह शास्त्रों या धर्मग्रंथों से अनभिज्ञ होता है। धर्मग्रंथों का साहा ने गंभीर अध्ययन किया था उसी से वे विश्वासपूर्वक घोषणा करते थे, "इस लेखक का यह दावा है कि उसे सारी पुस्तकों (वैदिक साहित्य)[58] का प्रत्यक्ष ज्ञान है।" अपने कथन में संपूर्ण विश्वास और आक्रामक शैली साहा जैसे योद्धा का अधिचिह्न था।

वह किस बात के विरुद्ध युद्ध कर रहे थे ? इसके बारे में साहा द्वारा स्वयं दिया गया विवरण उनके अनेक लोकप्रिय और अर्ध वैज्ञानिक लेखों में से एक में मिलता है। तापीय आयनन पर अपने काम से ख्याति प्राप्त करने के बाद साहा ढाका गए। ढाका के एक वकील यह जानना चाहते थे कि उनका वैज्ञानिक कार्य किस प्रकार का था। अपने अभिलक्षणिक कोश के साथ युवा साहा ने तारों के संगठन और अपनी अद्यतन खोज के बारे में बड़े विस्तार से उनको बताया। परंतु श्रोता अप्रभावित दिखाई पड़े। प्रत्येक क्षण के बाद वे यह कहकर टोक देते, यह कोई नई बात नहीं है, यह सब तो हमारे वेदों में है। घृणापूर्वक साहा ने उनसे पूछा, "क्या आप कृपापूर्वक यह बताएंगे कि वेदों के किस भाग में तारों के आयनन का सिद्धांत मिलेगा।" साहा को हताश करते हुए उस सज्जन ने निर्भीकता से उत्तर दिया, "मैंने स्वयं वेदों को नहीं पढ़ा है, लेकिन यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि आप लोग जो भी नवीन वैज्ञानिक अनुसंधान का दावा करते हैं वह सब वेदों[59] के अंतर्गत दिया हुआ है।"

साहा ने अपने जीवन के बाकी बीस वर्षो को वेदों, उपनिषदों, पुराणों तथा हिंदू खगोल शास्त्रीय पुस्तकों को पढ़ने में बिताया। यह सच है कि उनमें कुछ भौतिक नियमों के संबंध में बुद्धिमता पूर्ण अनुमान थे जैसे भास्कर की गुरुत्वाकर्षण की धारणा परंतु वे न्यूटन के यथार्थ निरूपण के कहीं भी निकट नहीं थे। राष्ट्रीय गौरव में झूठी भावना के वशीभूत होकर पश्चिमी प्रायोगिक विज्ञान को कम समझना मूर्खता होगी। यह कहना अनावश्यक होगा कि साहा को रुढ़िवादियों की अप्रसन्नता सहनी पड़ी और 1939 में "जीवन[60] का एक नया दर्शन" पर शांतिनिकेतन में साहा के व्याख्यान के बाद मामला चरम स्थिति में पहुंच गया।

"प्राचीन चीन में ईश्वर की धारणा एक ऐसे शिल्पकार की थी जिसने रूखानी और हथौड़े से पहाड़ियों को काटकर इस संसार की रचना की थी। फिर इसमें क्या आश्चर्य कि चीनियों ने महान मूर्तिकारों और शिल्पकारों को जन्म दिया है। उनकी संस्कृति में कलाकार और शिल्पकार को सर्वोच्च सम्मान दिया जाता है। हिंदुओं के ब्रह्मा (सृष्टि निर्माता) दार्शनिक हैं। उन्होंने संसार और उसकी प्रत्येक वस्तु को अपने विचारों से उत्पन्न किया। यही कारण है कि जो लोग अपना समय व्यर्थ

की दार्शनिक कल्पनाओं में व्यतीत करते हैं उनका हमारे समाज में बहुत ऊंचा स्थान है। कलाकार एवम शिल्पकार सामाजिक सोपान में काफी नीचे हैं। इसके परिणामस्वरूप हिंदुओं ने अपनी उत्पादन कला एवं विधि में सुधार नहीं किया और उन विदेशियों द्वारा बार बार पराजित हुए जिनका यांत्रिक ज्ञान अधिक उन्नत था। इस टिप्पणी की बड़ी प्रबल प्रतिक्रिया हुई। इन वक्तव्यों के औचित्य को चुनौती देते हुए लेख लिखे गए; आक्षेपों का उत्तर प्रत्यारोपों से किया गया। आलोचकों ने साहा पर अनाधिकृत क्षेत्र में प्रवेश करने का दोषारोपण किया। "यदि प्रोफेसर साहा को हिंदू धर्म, दर्शन एवं इतिहास का कुछ भी ज्ञान होता तो वे समझ सकते कि इस प्रकार की टिप्पणी उनके समान वैज्ञानिक की प्रतिष्ठा के अनुपयुक्त[61] थी।" और बातों के साथ एक आलोचक ने लिखा "न तो मेघनाद साहा और न रवींद्रनाथ टैगोर शिल्पकार हैं। क्या इसके यह माने हैं कि एक अच्छे बुनकर या जूता मोची को हम उनके ऊपर स्थान दें।"

भला साहा कैसे चुप रहते। साहा गरजे[62] "क्यों नहीं ? क्यों एक अज्ञात पुरोहित को जो बिना संस्कृत श्लोकों का अर्थ समझे विवाह या श्राद्ध संस्कार कराता है बुनकर या मोची से उच्च स्थान दिया जाए ? जूता बनाने वाला या उसका लड़का जैसे बाटा या लायड जार्ज सचमुच उच्चतम सम्मान के पात्र हैं।" चार लेखों की एक लेखमाला में साहा ने सभी तर्कों का एक एक करके उत्तर देने का प्रयास किया जिस में उद्धरण और आंकड़े दिए थे और जिससे हिंदू धर्म एवं दर्शन के उनके विस्तृत ज्ञान पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता था।

अपने वृत्तिक के आरंभिक दिनों में ही ढाका के वकील से जो मुठभेड़ हुई थी उससे साहा को ज्ञान हो गया था कि वे किसका विरोध कर रहे थे। यह घटना उनके मित्रों तथा सहकर्मियों में इतनी प्रसिद्ध थी "यह सब वेदों में है" अज्ञानता का पर्यायवाची बन गया। साहा के एक घनिष्ठ मित्र सत्येन बोस अपने अनेक भाषणों तथा लेखों में इस प्रवृत्ति का उल्लेख करते रहते।

साहा किसी प्रकार के अनुष्ठान आधारित धर्म के विरुद्ध थे। इस घृणा के स्रोत को पीछे मुड़ कर ढूंढ़ा जाए तो यह उनके बचपन के अनुभवों में मिलेगा। जो भी कारण रहा हो, वे उसी का पूरे मन से व्यवहार करते जिसका उपेदश देते थे। जब उनके माता-पिता का देहांत हुआ तो उन्होंने विधिवत श्राद्ध नहीं किया यद्यपि उस दिन इलाहाबाद में कुछ गरीबों को भोजन अवश्य कराया। फिर भी बच्चों के समान उनका मन मुक्त रूप से ग्रहणशील था और अधिक तर्क संगत और संगठित बाल विवाह के अनुष्ठानों से प्रकटतः प्रभावित था।

साहा अपने भौतिकवादी दर्शन के लिए बहुधा गलत समझे गए हैं क्योंकि वे "गांधी की अपेक्षा लेनिन को अधिमान्यता" देते थे। गांधी की अपेक्षा लेनिन को अधिमान्यता पूर्णतया विश्वास पर आधारित थी।

लेनिन के एक उद्धरण से कि साम्यवाद "सोवियत शक्ति विद्युतीकरण" है यदि परखा जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि साहा सोवियत तंत्र की और उसके उन्नत औद्योगिकीकरण से आकर्षित हुए थे क्योंकि उसने एक पिछड़े हुए देश के रूप को परिवर्तित करने का अनूठा कार्य किया था। यहां कविवर टैगोर के प्रशंसायुक्त शब्दों को याद करने से नहीं रहा जा सकता जो उन्होंने सोवियत रूस के लोगों पर उनके असंभव प्रायः कार्य के लिए न्यौछावर किया था। साहा के लिए काम ही परमेश्वर था, यद्यपि वे इसे ईश्वर कहते इसमें संदेह है क्योंकि यह पवित्र को दूषित करने के समान होता। ऐसा प्रतीत होता है कि साहा के चरित्र पर मुख्य प्रभाव सर पी.सी.रे. का पड़ा था। वास्तव में रे के ही द्वारा उन्हें इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ जो उनका जीवन संचालन भावावेश बनने वाला था अर्थात बाढ़ के जल का नियंत्रण। साहा युवा सामाजिक कार्यकर्ता के जोश और पौरुष के साथ राहत कार्य में इतने संलग्न हो गए कि जब वे लौटकर प्रयोगशाला में आ गए तब भी समस्या उनके मस्तिष्क को मथती रही। भौतिकीविद साहा के लिए यह अकुलाहट भरा दृश्य था—सरिता के प्रबल अहानिकारक प्रवाह में बड़ी हुई ऊर्जा। इस बंधे हुए ऊर्जा स्रोत ने उनको सम्मोहित कर लिया। इसमें निष्कपट वैज्ञानिक की प्रफुल्लता का वही भाव था जो प्रथम परमाणु बम के विस्फोट के कष्ट से उनके उद्‌गार में था। "कैसा अतिशय सुंदर यह दृश्य रहा होगा ?"

नदी को नियंत्रित करने का विचार उनके अंतःकरण को बेधता रहा है। ऐसा संभव नहीं कि वे बाढ़ नियंत्रण कार्य से दुखित हुए हों। प्रकृति के कोप के विरुद्ध मनुष्य की निस्सहायता के दृश्य से उनके मन में रोष उत्पन्न हुआ होगा। उनकी सामाजिक चेतना भावुक मनुष्य की भांति नहीं थी : यह ऐसे मनुष्य की थी जिसे न केवल वैज्ञानिक शिक्षा मिली थी वरन जिसका मस्तिष्क भी युक्ति युक्त था। उन्होंने समस्या का विश्लेषण किया और उसके समाधान में लग गए। और एक बार जब समाधान के बारे में उन्हें विश्वास हो गया तो उसे वे दूसरों से मनवाने में लग गए। सामाजिक उद्देश्य की भावना उन्हें सदैव शैक्षणिक चहारदिवारी के बाहर जाने को प्रेरित करती रही।

पी.सी.रे. बंगालियों के जीवन के पतन से अधिक चिंतित थे और वे बंगालियों की सफेद पोश कार्य की अभिलाषा की भर्त्सना करते रहते थे। बंगाली वाणिज्य एवं व्यापार को तुच्छ दृष्टि से देखते थे और इस अस्वस्थ प्रवृत्ति के लिए रे विश्वविद्यालय की शिक्षा को दोष देते थे। उन्हें लोगों की अभिवृत्ति और उसे बदलने के उपाय की अधिक चिंता थी। बाद में जब वे गांधी जी की चरखा की नीति के अनुयायी बन गए तब उनके छात्र साहा उनसे जोरों से अप्रसन्न और असहमत हो उठे। परंतु मतांतर होने पर भी उनके संबंध सदैव मधुर बने रहे। पी.सी. रे उनसे बराबर पत्र-व्यवहार करते रहते। साइंस एंड कल्चर में साहा के लेखों के संदर्भ में

उन्होंने अपने एक पत्र में प्रेम दर्शाते हुए लिखा, "तुम इलाहाबाद से विद्युत आघात प्रेषित कर रहे हो।" जब भी रे इलाहाबाद जाते साहा के ही यहां ठहरते। ऐसे ही एक अवसर पर रे स्टेशन पर समय से पहुंचने की जल्दी में थे। साहा ने चुपके से पूछा, "महोदय, कृपया बताइए क्या मैं एक बैलगाड़ी बुलवा दूं।" प्रोफेसर द्वारा आधुनिक यंत्रों के बहिष्कार पर फब्ती कसने में साहा कभी नहीं चूकते।

बड़े पैमाने पर औद्योगिकीकरण में उनका विश्वास गांधी जी की आर्थिक धारणा के बिल्कुल विपरीत था जिसमें लघु उद्योगों पर गांव को स्वावलंबी ईकाई बनाने पर जोर दिया गया था। क्यों लोग गांवों में वापस न आए इसके संबंध में साहा[63] का तर्क था कि "लोगों को पहले ही काम कठिनाई से मिलता है अतएव भूमि से और अपेक्षा की जाएगी। वे किसी नगर निवासी का आना और अपने भूभाग पर भीड़-भाड़ मचाना नहीं चाहते थे। इसके अतिरिक्त हमारा ध्येय निर्धनतम ग्रामवासी के जीवन-स्तर को उठाने का होना चाहिए और यहीं पर सोवियत माडल आदर्श उदाहरण प्रतीत होता है। बड़े पैमाने पर औद्योगिकीकरण से प्राप्त उपभोक्ता वस्तुएं ही एक मात्र उत्तर हैं। जिस प्रकार औद्योगिक क्रांति ने उपभोक्ता वस्तुओं के पुंज उत्पादन द्वारा भौतिक सुख निम्न स्तर तक पहुंचाया उससे प्रकट होता है कि आधुनिक इंग्लैंड में लोग रोमन साम्राज्य की अपेक्षा अधिक सुख से रहते हैं। इसके अतिरिक्त, हमारी बड़ी नदियों के अपार ऊर्जा स्रोतों और अन्य अन्वेषित संभाव्यताओं के उपयोग का एक उपाय है—वैज्ञानिक और तकनीकी विधियों को काम में लाना। गांधी की अर्थव्यवस्था इसकी अनदेखी करती है।" यह देखकर प्रसन्नता होती है कि साहा ने सदा जल विद्युत के लिए नदियों के नियंत्रण पर जोर दिया। संसार तो अभी हाल में इस कड़वे तथ्य के प्रति जागरुक हुआ है कि परंपरागत ऊर्जा के स्रोत सूखते जा रहे हैं। लेकिन नदी सूर्य की भांति अब भी ऊर्जा का अनंत स्रोत है।

साहा केवल अपने विश्वासों की ही चर्चा नहीं करते थे वरन संसार के विभिन्न भागों में नदी परियोजनाओं का विवरण तैयार करने के लिए बहुत-सा कठोर प्रारंभिक कार्य भी उन्होंने किया। उनके जर्नल साइंस एंड कल्चर ने विशेषज्ञों के बहुतेरे लेख नदी नियंत्रण के वैज्ञानिक, तकनीकी और प्रशासनिक पक्षों पर प्रकाशित किए। उनके छात्र तथा सुयोग्य अनुयायी कमलेश रे, अनेक वर्षो तक दामोदर घाटी निगम के साथ थे।

भारी उद्योगों को स्थापित करने पर अपने तमाम जोर के बावजूद साहा मूलभूत अनुसंधान पर सरकारी नियंत्रण के विरुद्ध थे। इस बात में वे सर आशुतोष के दृष्टिकोण को मानते थे, परंतु एक इस युद्ध में उन्हें पराजय स्वीकार करनी पड़ी। वृहद अनुसंधान जो रूप धारण कर रहा था, उसमें सरकारी अनुदान और अनुदान के साथ कुछ हद तक नियंत्रण भी स्वीकार करने के अतिरिक्त और कोई उपाय

नहीं था। 1948 में न्यूक्लीय भौतिकी संस्थान की आधार शिला रखने के अवसर पर उनके एक भाषण का उद्धरण दिया जा रहा है।

"न्यूक्लीय विज्ञान में अनुसंधान के सबंध में ग्रेट ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमेरिका दोनों सरकारों की विकेंद्रीकरण की नीति के बारे में सहमत हूं। इन दोनों ही देशों में दो प्रकार की संस्थाएं हैं। प्रथम, अर्ध सैनिक प्रकार के संस्थापन जैसे इंग्लैंड में हावे तथा संयुक्त राज्य में ओकरिज। वहां काम सरकार द्वारा दिए गए धन से कठोर सैनिक पर्यवेक्षण में किया जाता है। ऐसी संस्थाओं का संबंध मुख्य रूप से सैनिक या औद्योगिक कार्यो में परमाणु ऊर्जा के उपयोग संबंधी समस्याओं से है। परमाणु फाइलों की रचना, बडे पैमाने पर विखंडनीय समस्थानिकों को विलग करना जैसी बड़ी बड़ी समस्याओं को भी सुलझाते रहे हैं और मुक्त विश्वविद्यालय जीवन में कुछ पक्षों को भी धारण किए रहने का प्रयत्न कर रहे हैं।

"दूसरे प्रकार के संस्थानों में नए परमाणु अनुसंधान बड़े पैमाने पर किए जा रहे हैं। प्रसिद्ध विश्वविद्यालय और तकनीकी संस्थाएं हैं जो परमाणु तथा उच्च प्रशिक्षण प्राप्त कार्मिकों के कारण मूलभूत अनुसंधान के लिए अधिक उपयुक्त हैं। इन संस्थानों को सरकार द्वारा बड़ी धनराशि दी जाती है और अनुदानों के साथ कोई प्रतिबंध भी नहीं होता।"

साहा हमारे देश के लिए भी शोध के ऐसे ही रूप को अपने मन में संजोए थे। अतएव वे परमाणु ऊर्जा विभाग की स्थापना के पक्ष में नहीं थे क्योंकि वे समझते थे कि अत्यधिक नियंत्रण द्वारा विश्वविद्यालयों में धन एवं योग्य पुरुषों दोनों की ही कमी हो जाएगी। सर्वोपरि वे शैक्षणिक स्वतंत्रता का मान करते थे और जब नेहरू ने कहा कि नाभिकीय भौतिकी कम से कम गोपनीय क्षेत्र में तो होनी चाहिए तो साहा उनसे असहमत होने के लिए बाध्य थे।

उनके दृष्टिकोण की सीमाएं थीं—सीमाओं के खड़ी होने के कारण थे उद्देश्य प्राप्ति की भावना, उनकी अटूट आशा, कठिनाइयों को कठिनाइयां समझने से इंकार करना। उनका प्रमुख दोष था अधैर्य, वे सरकार द्वारा परियोजनाओं के कार्यान्वियन में अकारण विलंब की संसद में कड़ी आलोचना करते। अनेक लोकतांत्रिक पद्धति में उठने वाली कठिनाइयों पर ध्यान देने से वे इंकार करते। अपने छात्र एन.के. साहा को लिखे एक पत्र में अपने दर्शन को उन्होंने इन शब्दों में व्यक्त किया। "तुम परिश्रम से काम करो, मान्यता अवश्य मिलेगी" छोटे आदमी जल्दी ही सहम जाते हैं, परंतु जिन मनोवैज्ञानिक कारणों से साहा प्रेरित होते थे उन्होंने प्रारंभिक जीवन की कठिनाइयों को जीतने और प्रत्येक चुनौती का बहादुरी से सामना करने में सहायता की।

यदि साहा का व्यक्तित्व प्रभावशाली था तो अपने छात्रों में भी वे कम प्रबल निष्ठा नहीं जागृत करते थे। अपने छात्रों से उनका संबंध भय और श्रद्धा का

विचित्र मिश्रण था। वे अपने गर्म स्वभाव के लिए प्रसिद्ध थे, फिर भी वे बिना कारण नहीं भड़क उठते थे। काम में शिथिलता, एवं अनुत्तरदायित्व का लवलेश चिह्न उनकी दृष्टि में अपराध था। एक प्रकार से यह अच्छा निवारक था, कोई स्वप्न में भी प्रोफेसर को रुष्ट करना नहीं चाहता था। इस पर भी यह प्रसिद्ध है कि उनके मन में भी सदैव छात्रों के हित की चिंता रहती थी। संसद में के. डी. मालवीय द्वारा अपने ऊपर विकट आक्रमण के बावजूद साहा ने उनसे अपने संस्थान की छात्र सभा भवन का उद्‌घाटन करने के लिए कहा। आखिर मालवीय उनके पुराने छात्र थे और साहा के सामने अन्य बातें अर्थहीन थीं।

गुरु-शिष्य संबंध का जो भाव साहा के मन में था वह निश्चय ही पुराने युग के लोगों का गुण था और संभवतया साहा इस समूह के अंतिम महामानव थे।

नवीं शताब्दी के एक संस्कृत ग्रंथ रसांद्र चिंतामणि के एक विशेष श्लोक को उद्धृत करना उन्हें प्रिय था '

अश्रौषं बहुविदुषां मुखादपश्यम्
शास्त्रेषु स्थितकृतं न तल्लिखामि।
यत् कर्म व्यरचयमग्रती गुरुणां
प्रोढाणां तदिह वदामि बोतशङ्क।।
अध्यापयन्ति यदि दर्शयितुं क्षमन्ते
सूतेन्द्र कर्मगुरबे। गुरवस्त एव।
शिष्यास्त एव वचयन्ति गुरोः पुरे ये।
शेषा पुनस्तद्‌भयाभिनयं भजन्ते।।

मैंने ऋषियों के मुख से बहुत-सी बातें सुनी हैं मैंने सम्मान्य शास्त्रों में अनेक सूत्रों को देखा है, परंतु मैं ऐसी बातें नहीं लिख रहा हूं। जिसे मैंने स्वयं नहीं किया है। मैं निडरता से केवल वही लिख रहा हूं जिसे मैंने अपने से बड़ों के सामने स्वयं अपने हाथ से किया है। केवल वही सच्चे गुरु मानने योग्य हैं जो प्रयोग द्वारा उन चीजों को दिखा सकते हैं जिन्हें वे सिखाते हैं। योग्य शिष्य वही हैं जो अपने गुरुओं से सीखकर वास्तव में उसे कर सकते हैं और उसमें सुधार कर सकते हैं। शेष सब केवल मंच पर अभिनय के समान है।

अंतिम विश्लेषण में साहा की सबसे बड़ी इच्छा पूर्ति अध्यापक के रूप में हुई क्योंकि वे विश्वसनीयता एवं सच्चाई जैसे खरे गुणों से विभूषित थे।

संदर्भ

1. एस. एन. सेन (संपा) · *प्रोफेसर मेघनाद साहा—उनका जीवन कार्य एवं दर्शन,* मेघनाद साहा—साठवां जन्मदिवस समिति, कलकत्ता, 1954
2. डी. एस. कोठरी *मेघनाद साहा* रायल सोसाइटी के फैलो के जीवनचरित संबंधी संस्मरण, 5, 217 (1960)
3. डी. एम. बोस : *मेघनाद साहा स्मारक व्याख्यान* नेशनल इंस्टीट्यूट आव साईस आव इंडिया की कार्रवाई, 33ए (सं. 3 एवं 4), 300, 1967
4. शांतिमय चटर्जी (संपा.) : *मेघनाद रचना संकलन,* ओरिएंट लांगमैन लि., कलकत्ता, 1966
5. शांतिमय चटर्जी (संपा.) · *कलेक्टेड साइंटिफिक पेपर्स आफ मेघनाद साहा,* सी.एस आई.आर., नई दिल्ली, 1969
6. शांतिमय चटर्जी (सपा.) : *कलेक्टेड वर्क्स आफ मेघनाद साहा,* ओरिएंट लागमैन लि., कलकत्ता, 1983
7. राबर्ट एस. एंडरसन · *बिल्डिंग साइंटिफिक इंस्टीट्यूशंस आफ इंडिया,* मैकगिल विश्वविद्यालय, मांट्रियल, 1975
8. जगजीत सिंह : *सम इंडियन साइंटिस्ट्स,* पब्लिकेशंस डिविजन, गवर्नमेंट आफ इंडिया, 1966
9. डी. के. मिश्रा : *फाइव एमिनेंट साइंटिस्ट्स,* कल्याणी प्रकाशक, दिल्ली, 1976
10. शांतिमय चटर्जी एव एणाक्षी चटर्जी : *सत्येंद्र नाथ बोस,* नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली, 1976
11. गोपाल चंद्रदास : *अमर जीवन,* नरेशचंद्र दास, 38 पंचानन घोष लेन, कलकत्ता-9। इस पुस्तक में पूर्वी बंगाल में उन दिनों के जीवन की दशा का वर्णन है जिन दिनों साहा ढाका के स्कूल में थे।
12. पी. सी. रे : *आत्मचरित्र,* चक्रवर्ती चटर्जी एंड कं., कलकत्ता
13. डी.एम. बोस : *प्रस्तावना,* सं. 5, पृ. vi
14. ए. एडिंग्टन, *तारे इनसाइक्लोपिडिया ब्रिटेनिका* (14 वां संस्करण) जिल्द 21, पृ. 318
15. एस. रोज़लैंड : *सैद्धांतिक खगोलभौतिकी,* आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
16. एम. एन. साहा का पत्र प्रोफेसर एच. एच प्लैस्केट, विश्वविद्यालय वेधशाला

आक्सफोर्ड, 18.12.1946—प्रोफेसर ए. के. साहा के सौजन्य से प्राप्त
17. ए. जे. मिडोज़ : *विज्ञान एवं विवाद*, मैक्मिलन प्रेस लि., 1972, पृ. 302
18. ए. पी. दास गुप्ता : *आशुतोष मुकर्जी*, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली, 1973, दीक्षात भाषण, 1922, पृ. 82
19. तत्रैव, पृ. 86
20. कलकत्ता रिव्यु, नव. 1933, पृ. 332
21. संदर्भ 4 : पृ. 61 प्रवासी से, 28, 60, 1928
22. संदर्भ 4 : पृ. 80 प्रवासी से, 28, 719, 1928
23. आर्नल्ड सामरफेल्ड, *थर्मोडाइनेमिक्म एड स्टेटिस्टिकल फिजिकल लेक्चर्स ऑन थिअरेटिकल फिज़िक्स*, जिल्द 5, एकेडेमिक प्रेस इनका पब्लिशर्स, न्यूयार्क, पृ 1
24. एन. के. साहा : *माई रेमिनिसेंसेज़ विद मेघनाद साहा*—मिमियोग्राफ प्रति, 1966
25. संदर्भ 1 : पृ. 34
26. संदर्भ 1 : पृ. 35
27. एम. एन. साहा : भारतीय विज्ञान कांग्रेस एसोसिएशन 1934 के प्रधान अध्यक्ष का भाषण
28. एल. एल. फरमोर : उद्घाटन भाषण, भारत की नेशनल इंस्टीट्यूट आफ साइंसेज की कार्रवाई, 1.10.1935
29. ईश्वरी प्रसाद : *डॉ. मेघनाद साहा, जैसा कि मै जानता था*, अमृत बाजार पत्रिका, 1956
30. फिज़िक ज़ाइत्सश्तर, 28, 221, 1927
31. एम. एन. साहा : *विशेप रूप से भारत के संदर्भ में, मामाजिक एव अंतर्राष्ट्रीय योजना में विज्ञान*, नेचर, 155, 221, 1945
32. संदर्भ 1 : पृ. 75 कलकत्ता विश्वविद्यालय के सिनेट में कुलपति का भाषण, 12, मई, 1951
33. एम. एन. साहा : "साइंस एंड कल्चर" 18, 103, 1956 परिशिष्ट II-बी
34. संदर्भ 2 : पृ. 226
35. बी. पी. अदारकर : *दि वार कम्स*, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद 1939—एम. एन. साहा द्वारा लिखित प्रस्तावना
36. संदर्भ 1 : पृ. 92
37. संदर्भ 4 : पृ. 15, नव्य भारत, 34, 376, 1922
38. संदर्भ 1 : पृ. 93
39. ज. नेहरू : *डिस्कवरी आफ इंडिया* (6ठा संस्करण) पृ. 432, 1956
40. संदर्भ 1 : पृ. 104
41. लोकसभा बहस, जिल्द 5, पृ. 7026, मई 10, 1954
42. तत्रैव : पृ. 7007
43. परिशिष्ट 1-बी : लेख 15-31

44. डी.एम. बोस, सदर्भ 3 : पृ. 117
45. संदर्भ 41, 7036
46. बलवंत भनेजा। मिनर्वा : 17, न. 1, बसंत...
47. सदर्भ 1 : पृ. 132
48. परिशिष्ट 1–13–लेख 32–42
49. लोकसभा बहस, सामान्य बजट जिल्द 3, 4228 (6 अ. 1954)
50. तत्रैव पृ. 4229
51. परिशिष्ट 1–बी लेख 113–122
52. *रिपोर्ट आफ दि कलेंडर रिफार्म कमिटी,* सी एस आई आर, नई दिल्ली, 1955
53. *ए फाइव ईयर प्लान आफ डेवलपमेंट* (1954-59), आई ए सी एस, कलकत्ता, 1954
54 *दि सेंचुरी* आई ए सी एस, कलकत्ता, 1976
55. *अमृत बाजार पत्रिका,* नव. 26, 1954
56 *हिंदुस्तान स्टैंडर्ड,* अगस्त 9, 1938
57. परिशिष्ट 1–बी, लेख 100–106
58. सदर्भ 4 . पृ 142–भारतवर्ष ,27, 37, 1939
59. तत्रैव पृ. 160–भारतवर्ष ,27, 407, 1940
60 तत्रैव : पृ. 113 –भारतवर्ष ,26, 937, 1939
61 तत्रैव पृ 117–अनिल बरन रे, भारतवर्ष, 26, 665, 1939
62. सदर्भ 4 . पृ. 113–भारतवर्ष ,26, 937, 1939
63 तत्रैव पृ. 13,–नव्य भारत, 34, 376, 1922

परिशिष्ट–1

प्रकाशनों की सूची

(क) वैज्ञानिक लेख ['मेघनाद साहा के वैज्ञानिक लेख' (सी एस आई आर) में सम्मिलित)–कालानुक्रमित : व्यवस्थित

1. मैक्सवेल के प्रतिबलों पर : फिलो. मैग. क्रम VI, 33, 256, 1917
2. फैब्री-पेरो व्यतिकरणमापी में व्यतिकरण की सीमा पर : फिजि. रिव्यू, 10, 782, 1917
3. प्रत्यास्थता में एक नए प्रमेय पर : जर्नल एशिया सो. बंगाल, न्यूसि. 14, 421, 1918
4. प्रकाश के दाब पर (एस. चक्रवर्ती के साथ) : जर्नल एशिया सो. बंगाल, न्यूसि. 14, 425, 1918
5. इलेक्ट्रान की गतिकी पर, फिलो. मैग. न्यूसि. VI, 36, 76, 1918
6. अवस्था समीकरण पर अणुओं के परिमित आयनन के प्रभाव पर (एस. एन. बोस के साथ) : फिलो. मैग. सि. VI, 36, 199, 1918
7. इलेक्ट्रान के यांत्रिक एवं विद्युत गतिकीय गुणों पर : फिजि. रिव्यू 13, 34, 1919, फिजि. रि. 13, 238, 1919
8. विकिरण दाब और क्वांटम सिद्धांत पर–प्रारंभिक टिप्पणी : अस्ट्रो, फिजि. जर्नल, 50, 220, 1919
9. विद्युत क्रिया के मौलिक नियम पर : फिलो. मैग. सि. VI, 37, 347, 1919
10. सौर वायुमंडल के वरणात्मक विकिरण दाब एवं विकिरणी संतुलन पर, जर्नल डिपा, साइंस, कल. यूनि, 2 (फिजिक्स), 51, 1920
11. हाइड्रोजन के द्वितीयिक स्पेक्ट्रम पर टिप्पणी : फिलो. मैग. सि. VI, 40, 159, 1920
12. सौर वर्ष मंडल में आयनन : फिलो. मैग. सि. VI, 40, 472, 1920
13. सूर्य में तत्व : फिलो. मैग. सि. VI, 40, 809, 1920

14. नोवा एक्विला III की समस्या पर जर्न. अस्ट्रो. सो. इंडिया, 10, 36, 1920
15. गैसों के ताप विकिरण की समस्या पर (लेख सी) फिलो. मैग. सि. VI, 41, 267, 1921
16. परमाण्विक अर्धव्यास और आयनन विभव : नेचर, 107, 682, 1921
17. तारकीय स्पेक्ट्रमों के एक भौतिक सिद्धांत पर : प्रोसि. रायल, सो. लंदन ए 99, 135, 1921
18. Versuch ei:1 er Theorie der Physikalischen Erscheinungen bei hoben Tmperaturen mit Anwendunyen auf die Astrophysik Zeet f Phys 6, 40, 1921
19. इलेक्ट्रान रसायन और विकिरण तथा खगोल भौतिकी की समस्याओं में इसके अनुप्रयोग पर, अस्ट्रो. सो. ई; 10, 72, 1921
20. तारकीय वायुमंडल में कैल्शियम की स्थिर H एवं K रेखाएं : नेचर, 107, 448, 1921
21. ऊष्मा द्वारा गैसों के आयनन पर (पी. गुंथर के साथ) : जर्नल डिपा. साइंस कल. यूनि. 4, 97, 1922
22. आवर्ती वर्गीकरण के उच्च समूह तत्वों के ताप आयनन पर : फिलो. मैग. सि. VI, 44, 1128, 1922
23. उच्च ताप पर तत्वों के भौतिक गुणों पर : फिलो. मैग. VI, 46, 534, 1923
24. सूर्य के सतत विकिरण पर : नेचर, 112, 282, 1923
25. तत्वों के तापीय आयनन के एक प्रायोगिक जांच पर (एन. के. सूर के साथ) : जर्नल इंडियन केमि. सो., 1, 9, 1924
26. नाइट्रोजन के एक सक्रिय रूपांतरण पर (एन. के. सूर के साथ) : फिलो. मैग. सिरि. VI, 48, 421, 1924
27. तारों के उत्क्रमण परत में दाब और सूर्य से सतत विकिरण, नेचर, 114, 155, 1924
28. तारकीय वायुमंडलों में आयनन और स्टेरिककारक : मान. नाट. राय. अस्ट्रो. सो., 85, 977, 1925
29. आयनन संतुलन पर विकिरण का प्रभाव (आर. के. सूर के साथ) नेचर, 115, 377, 1925
30. अवस्था नियम और गैसों की संदीप्ति तथा आयनन की समस्याओं में इसका अनुप्रयोग : जर्नल इंडि. केमि. सो., 2, 49, 1925
31. Si^{+} (एक बार आयनित सिलिकान) का स्पेक्ट्रम : नेचर, 119, 644, 1925

32. एंट्रापी के निरपेक्ष मान पर (आर. के. सूर के साथ) : फिलो. मैग. सि. VII, 1, 890, 1926
33. विकिरण II के एंट्रापी पर (आर. के. सूर के साथ) : फिलो. मैग. सि. VII, 1, 890, 1926
34. आयनन संतुलन पर विकिरण के प्रभाव पर (आर. के. सूर के साथ) : फिलो. मैग., सि. VII, 3, 1025, 1926
35. सूर्य में नाइट्रोजन : नेचर, 117, 268, 1926
36. Uber einen experimentellen Nachweis der thermischon Ionizierung der Elements (एन. के. सूर और के. मजुमदार के साथ) : Zeit f Phys, 40, 648, 1927
37. Uber das Mainsmith-Stonersche Schema des Aurbas der Atom (बी. वी. रे के साथ) Physik Zeitschr., 28, 221, 1927
38. Uber ein neues schema fur den Atomauflau : Physik Zeitschr., 28, 469, 1927
39. द्वितीय ग्रुप के धातुओं के स्पेक्ट्रमों की विस्तृत व्याख्या पर फिलो. मैग., सि., VII, 3, 1265, 1927
40. द्वितीय ग्रुप भाग II के धातुओं के स्पेक्ट्रमों की व्याख्या पर (पी. के. किचलू के साथ) : फिलो. मैग., सि. VII, 4, 193, 1927
41. निआन के स्पेक्ट्रम पर एक टिप्पणी : फिलो. मैग., सि. VII, 4, 223, 1927
42. तत्वों के जटिल स्पेक्ट्रमों की व्याख्या पर : Estratto dagli Atti del congresso Internazionale dei Fieici Como[2] Settembre, 1927 (V)
43. अनियमित द्विक नियम का जटिल स्पेक्ट्रमों में विस्तार (पी. के. किचलू के साथ) (ए) इंडि. जर्न. फिजि. 2, 319, 1928, (बी) नेचर, 121, 224, 1928
44. नेबेलियम स्पेक्ट्रम का उद्भव : नेचर, 121, 418, 1928
45. सौर किरीट के स्पेक्ट्रम का उद्भव : नेचर, 121, 671, 1928
46. ऋणात्मकता : रूपांतरित प्रकीर्णन (डी. एस. कोठारी और एस. टोशनीवाल के साथ) : नेचर, 122, 398, 1928
47. तत्वों के स्पेक्ट्रमों की स्थिति निर्धारण में क्षैतिज तुलना की विधि पर (के. मजूमदार के साथ) : इंडि. जर्न. फिजि. 3, 67, 1929
48. सांख्यिकीय यांत्रिकी में नवीन विधियों पर (आर. सी. मजूमदार के साथ): फिलो. मैग. सि. VII, 9, 584, 1930

49. अकार्बनिक लवणों के रंग : नेचर, 125, 163, 1930
50. Uber die Verteilung der Intensitat unter die Feinstruktur komponenten der serieninelen der Wasserstoffs und des ionisierlen Heliums nach der Diracschen Elektronentheorie. (ए. सी. बैनर्जी के साथ) Zeits f Phys, 68, 704,1931
51. फोटान का प्रचक्रण (वाई. भार्गव के साथ) : नेचर, 128, 817, 1931
52. अकार्बानिक लवणों के रंग पर (एस. सी. देव के साथ) : बुले. अका. साइं, यू. पी., 1, 1, 1931
53. बहुसंयोजक तत्वों के संतृप्त हैलाइडों के अवशोषण स्पेक्ट्रमों पर (ए. के. दत्त के साथ) : बुले. अका. साई. यू. पी., 1, 19, 1931
54. X-किरण पदमानों की व्याख्या पर (आर. एस. शर्मा के साथ) : बुले. अका. साइं. यू. पी., 1, 119, 1931
55. जटिल X- किरण अभिलक्षणिक स्पेक्ट्रम (एस. भार्गव और जे. बी. मुखर्जी के साथ) नेचर, 129, 435, 1932
56. रेडिया एक्टिव वस्तुओं की बीटा-किरण सक्रियता पर (डी. एस. कोठारी के साथ) : बुले. अका. साइ. इलाहाबाद, 5, 257, 1934
57. बीटा-किरण सक्रियता की एक प्रस्ताविक व्याख्या (डी. एस. कोठारी के साथ) (ए) नेचर, 132, 747, 1933, बी (नेचर) 133, 99, 1934
58. X-किरण स्पेक्ट्रमों मे आंतरिक रूपातरण (जे. बी. मुखर्जी के साथ) : नेचर, 133, 377, 1934
59. ऊपरी वायुमंडल : प्रोसि. नेश. इंस्टी. साइं. इंडि. 1, 217, 1935
60. पुच्छल ताराओं के स्पेक्ट्रम : साइं. एवं कल्चर, 1, 476, 1936
61. क्या इलेक्ट्रान न्यूक्लियसों में प्रवेश कर सकते हैं : साइं. एंड कल्चर 2, 273, 1936
62. न्यूट्रानों और प्रोट्रानों में संहति का उद्‌भव : इंडि. जर्न. फिजि. 10, 141, 1936
63. नाइट्रोजन के सक्रिय रूपांतरण के आधुनिक सिद्धांतों की एक सूक्ष्म समीक्षा (एल. एस. माथुर के साथ) : प्रोसि. नेश. अका. साइं. इंडि., 6, 120, 1939
64. एक नवीन माडल विआरोपणीय निर्वात भट्टी (ए. एन. टंडन के साथ) : प्रोसि. नेश. अका. साइं., 6, 212, 1936
65. एक समताप मंडलीय सौर वेधशाला : हार्वड कालेज वेधशाला बुलेटिन, 905, 1937
66. क्लोरीन की इलेक्ट्रान बंधुता का प्रायोगिक निर्धारण : (ए. एन. टंडन

के साथ) : प्रोसि. नेश. इंस्टी. साइं., इंडि. 3, 287, 1937

67. अंतरातारकीय अंतरिक्ष में अणु : नेचर, 139, 830, 1937
68. वायुमंडल में विद्युत चुंबकीय व तरंगों के प्रसारण पर : (आर. एन. राय के साथ) : प्रोसि. नेश. इंस्टी. साइं. इंडि. 3, 359, 1937
69. ऊपरी वायुमंडल पर पराबैंगनी सूर्य प्रकाश की क्रिया पर : प्रोसि. राय. सोसा; लंदन ए-160, 155, 1937
70. पृथ्वी के वायुमंडल से गुजरने में विद्युत चुंबकीय तरंगों के प्रसारण पर (लेख) आर. एन. राय और के. बी. माथुर के साथ) : प्रोसि. नेश. इंस्टी. साइं. इंडि. 4, 53, 1938
71. उपरि वायुमंडल के आयनन पर (आर. एन. राय के साथ) : प्रोसि. नेश. इंस्ट्री साइं. इंडि. 4, 53, 1938
72. आयन मंडल से गुजरने में विद्युत चुंबकीय तरंगों के प्रसारण एवं पूर्ण परावर्तन पर (के. बी. माथुर के साथ) : इंडि. जर्न. फिजि. 13, 251, 1939
73. परामाण्विक न्यूक्लियसों की संरचना पर (एस. सी. सरकार तथा के. सी. मुखर्जी के साथ) : प्रोसि. नेश. इंस्टी. साइं, इंडि. 6, 45, 1940
74. सौर किरीट के एक भौतिक सिद्धांत पर : प्रोसि. नेश. इंस्टी. साइंस. इंडि., 8, 99, 1940
75. गैसों से होकर जाते हुए धनात्मक आयनों द्वारा इलेक्ट्रानों का प्रग्रहण (डी. बसु के साथ) इंडि. जर्न. फिजि. 19, 121, 1945
76. आयन मंडल में विद्युत चुंबकीय तरगों के प्रसारण का तरंग विवेचन (वी. के. बैनर्जी के साथ) : इंडि. जर्न. फिजि. 19, 159, 1945
77. सौर किरीट का एक भौतिक सिद्धांत : प्रोसि. फिजि. सोसा. लंद, 57, 271, 1935
78. न्यूक्लीय भौतिकी तथा बीटा सक्रियता (ए. के. साहा के साथ) : ट्रांस. नेश. इंस्टी. साइं., इंडि., 1, 271, 1945
79. न्यूक्लीय और्जिकी तथा बीटा सक्रियता (ए. के. साहा के साथ) : नेचर, 158, 6, 1946
80. सूर्य एवं तारों से रेडियो-आवृत्ति ऊर्जा के पलायन के प्रतिबंध : नेचर, 158, 549, 1946
81. सूर्य और तारों से रेडियो तरंगों का उद्‌भव : नेचर, 148, 717, 1946
82. भारत में भूवैज्ञानिक काल का मापन : चट्टानों और खनिजों की आयु (बी. डी. नाग चौधरी के साथ): ट्रांस. नेश. इंस्टी. साइं., इंडि., 2, 273, 1949

83. उपरि वायुमंडल से होकर जाने वाली विद्युत चुंबकीय तरंगों के प्रसारण पर (बी. के. बैनर्जी एवं यू. सी. गुहा के साथ) : इंडि. जर्न. फिजि. 21, 181, 1947
84. सूर्य से रेडियो-तरंग आवृत्ति के परास की सूक्ष्म तरंगों के पलायन की दशाओं पर (बी. के. बैनर्जी एवं यू. सी. गुहा के साथ) : इंडि. जर्न. फिजि., 21, 199, 1947
85. चुंबकीय ध्रुवों के डिराक सिद्धांत पर टिप्पणी : फिजि. रिव्यू. 95, 1968, 1949
86. आयन मंडल में विद्युत तरंगों का ऊर्ध्वाधर प्रसारण (बी. के. बैनर्जी एवं यू. सी. गुहा के साथ) : प्रोसि. नेश. इंस्ट्री. साइंस इंडि. 17, 205, 1951
87. प्राथमिक कास्मिक किरणों में न्यूआन के नग्नीकृत न्यूक्लियसों का विद्यमान होना : नेचर, 167, 476, 1951
88. o एवं x किरणों की आयन मंडलीय परतों में इलेक्ट्रान संकेंद्रण और सघट्ट आवृत्ति : प्रोसि. आयन मंडल पर मिश्र आयोग, ब्रसेल्स; 211, 1954

(ख) अन्य लेख (कलेक्टेड वर्क्स आव मेघनाद साहा में शामिल किए जाने वाले) विषयानुसार और प्रत्येक विषय में कालानुक्रमित : व्यवस्थित।

विज्ञान

खगोल विज्ञान एवं खगोल भौतिकी

1. दिक् काल (स्टेट्समैन नव. 13 एवं 15, 1919)
2. पूर्ण सूर्य ग्रहण में भौतिक निरीक्षण (कल. रिव्यू., 4, 095, 1920)
3. अवपरामाण्विक ऊष्मागतिकी का खगोल भौतिकी में अनुप्रयोग (प्रोसि. इंडि. साइं. कांग्रे. 1926)
4. बनारस में खगोलिकी वेधशाला के लिए दलील : पंडित मदन मोहन मालवीय का 70वां जन्मदिन स्मारक ग्रंथ, ए. बी. ध्रुव द्वारा संपादित 1932
5. मौलिक ब्रह्माणिकीय समस्याएं (प्रोसि. इंडि. साइं. कांग्रे. 1934)
6. छोटे-छोटे ग्रह (साइं. एंड कल्चर, 3, 312, 1937)
7. वायुमंडल पर सौर नियंत्रण (प्रोसि. नेश. इंटी. साइं. इंडि. वार्षिक व्याख्यान, 1939)
8. सौर किरीट के रहस्य का उद्घाटन (साइं. एंड कल्चर, 7, 247, 1941)
9. अंतर्राष्ट्रीय खगोलिकी संघ, 9वीं बैठक, डबलिन (साइं. एंड कल्चर, 21, 183, 1955)

स्पेक्ट्रमिकी

10. वियोजन संतुलन 'लाइफ एंड वर्क आव सर नार्मन लाकियर, एल. एम. लाकियर एवं डब्लू. एल. लाकियर द्वारा संपादित, मै. किपलन लंदन एवं बेसिंग स्टोक, 1928
11. "परमाणु भौतिकी पर छह व्याख्यान", विनिबंध, पटना विश्वविद्यालय, 1931
12. रसायन की सेवा में स्पेक्ट्रामिकी (सर पी. सी. रे. का 70वां जन्मदिन स्मारक ग्रंथ, इंडि. केमि. सोसा. 1933)

न्यूक्लीय भौतिकी–ब्रह्मांड किरण–न्यूक्लीय ऊर्जा

13. द्रव्य का अंतिम घटक (साइं. एंड कल्चर, 1, 12, 1935)
14. न्यूक्लीय ऊर्जा पर सम्मेलन (पी. एल. कपूर के साथ) : साइं. एंड कल्चर, 2, 133, 1937
15. यूरेनियम विखंडन (साइ. एंड कल्चर, 6, 694, 1941)
16. परमाणु बम की कहानी (बी. डी. नाग चौधरी के साथ) (साइ. एंड कल्चर, 11, 111, 1945)
17. परमाणु बम का तर्क (साइं. एंड कल्चर, 11, 212, 1945)
18. परमाणु बम के विकास ब्रिटेन का हिस्सा, (साइं. एंड कल्चर, 11, 214, 1945)
19. परमाणु बम (साइं. एंड कल्चर, 11, 645, 1946)
20. भारत में परमाणु ऊर्जा का औद्योगिक उपयोग (ए) साइं. एंड कल्चर, 13, 86, 1947 (बी) साइं. एंड कल्चर, 13, 134, 1947
21. परमाणु ऊर्जा का मोचन (साइं. एंड कल्चर, 13, 167, 1947)
22. प्राथमिक ब्रह्मांड किरणों का उद्भव (प्रोसि. इंटर. कान. आन प्राइमरी कास्मिक रेंज–टी आई एफ आर, बंबई, 1951)
23. अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर परमाणु ऊर्जा का शांतिमय उपयोग (साइं. एंड कल्चर, 19, 363, 1954)
24. परमाणु ऊर्जा का संगठन (साइं. एंड कल्चर, 19, 368, 1954)
25. परमाणु ऊर्जा का शांतिमय उपयोग (लोक सभा बहस, जिल्द 5, 7006 10 मई, 1954)
26. भारत में परमाणु ऊर्जा का भविष्य (साइं. एंड कल्चर, 20, 212, 1954)
27. भारत में परमाणु ऊर्जा (साइं. एंड कल्चर, 20, 208, 1954)
28. रिऐक्टरों के चुनाव और डिजाइन पर (ट्रांस. बोस इंस्टी., 20, 109, 1955)

29. परमाणु आयुध, निःशस्त्रीकरण एवं परमाणु ऊर्जा का उपयोग (ए) साइं. एंड कल्चर 21, 70 1955; (बी) वर्ल्ड कौंसिल आव पीस 1955
30. मास्को में परमाणु ऊर्जा सम्मेलन (साइं. एंड कल्चर, 21, 76, 1955)
31. अवैज्ञानिक युग का अंत (साइं. एड कल्चर, 21, 117, 1955)

राष्ट्रीय समस्याएं

नदी प्रबंधन

32. उत्तरी बंगाल की वृहद बाढ़ (माड. रिव्यू., 32, 605, 1922)
33. बंगाल की विध्वंसकारी बाढ़ और कैसे उनका प्रतिकार किया जा सकता है (माड. रिव्यू., 51, 163, 1932)।
34. बंगाल में जलीय अनुसंधान प्रयोगशाला की आवश्यकता (सर पी. सी रे का 70वां जन्मदिन स्मारक ग्रंथ, इंडि. केमि. सोसा., 237, 1933)
35. नदी भौतिकी प्रयोगशाला की आवश्यकता (1944 में बंबई में हुए 21 वें इंडियन साइस कांग्रेस के प्रधान अध्यक्ष के भाषण के अंतिम अंश से)
36. 1933 की दामोदर की बाढ़ (माड. रिव्यू., 58, 527, 1935)
37. भारत में सिंचाई अनुसंधान (साइं. एंड कल्चर, 2, 281, 1936)
38. भारतीय नदियों की समस्या (प्रोसि. नेश. इंस्टी. साइं. इंडि., 4, 23, 1938)
39. बाढ़ (साइं. एंड कल्चर, 9, 95, 1943)
40. टेनेसी नदी का नियमन (के. रे. के साथ); (साइ. एंड कल्चर, 9, 418, 1944)
41. दामोदर घाटी की योजना बनाना (के. रे. के साथ); (साइ. एंड कल्चर, 10, 20, 1944)
42. दामोदर घाटी भूमि पुनर्ग्रहण योजना (साइं. एंड कल्चर. 11, 513, 1946)
43. भारतीय नदियों का बहुउद्देशीय विकास (साइं. एंड कल्चर, 13, 3, 1947)
44. बहुउद्देश्यीय नदी योजना (लोक सभा बहस, सामान्य बजट, जिल्द 3, 4209, 6 अप्रैल, 1954)

शक्ति, ईंधन एवं विद्युत

45. विद्युत का सर्वसाधारण द्वारा एवं उद्योग में इसका उपयोग (साइं. एंड कल्चर, 1, 203, 1935)

46. भारत में विद्युत की सार्वजनिक आपूर्ति (साइं. एंड कल्चर, 1, 367, 1935)
47. विद्युत की राष्ट्रीय आपूर्ति (साइं. एंड कल्चर, 3, 65, 1937)
48. बुद्धिमान मनुष्य के लिए विद्युत शक्ति के उत्पादन एवं अर्थतंत्र की परिदर्शिका (ए. एन. टंडन के साथ) (साइं. एंड कल्चर, 3, 506 एवं. 574)
49. विद्युत आपूर्ति पर परिचर्चा—प्रारंभिक भाषण (प्रोसि. नेश. अका. साइं. इंडि. स्पेशल नं. 1, नव. 1938)
50. राष्ट्रीय ईंधन नीति चाहिए (साइं. एंड कल्चर, 6, 61, 1940)
51. तेल एवं अदृश्य साम्राज्यवाद (एस. एन. सेन के साथ) (साइं. एंड कल्चर, 8, 150, 1942)
52. भारत की शक्ति के विकास की आवश्यकता (साइं. एंड कल्चर, 10, 6, 1944)
53. भारत में ईंधन (नेचर, 177, 923, 1956)

संसाधन

54. भारत के राष्ट्रीय संसाधन के विकास में कुछ संवैधानिक रुकावटें (साइं. एंड कल्चर, 10, 455, 1945)
55. संसाधनों का विकास और भारतीय संविधान (साइं. एंड कल्चर, 11, 1, 1945)
56. मुख्य अतिथि के रूप में भाषण (जर्न. जिओ. मिन. एंड मेह. सोसा. इंडि. 25, नं. 4, 135, 1953)

औद्योगिकीकरण

57. भारत में औद्योगिक विकास की समस्याएं (साइं. एंड कल्चर, 2, 529, 1937)
58. औद्योगीकरण का दर्शन (माड. रिव्यू. 64, 145, 1938)
59. भारत सरकार द्वारा भारतीय उद्योग की तकनीकी सहायता (साइं. एंड कल्चर, 4, 147, 1938)
60. औद्योगिक भारत (साइं. एंड कल्चर, 4, 365, 1938)
61. भारत में आटोमोबाइल उद्योग (साइं. एंड कल्चर, 7, 465, 1942)
62. उद्योग में तकनीकी क्रांति—रूसियों ने कैसे किया (साइं. एंड कल्चर, 8, 9398, 1943)

63. औद्योगिक अनुसंधान एवं भारतीय उद्योग (साइं. एंड कल्चर, 8, 465, 1943)
64. औद्योगिक अनुसंधान (साइं. एंड कल्चर, 11, 119, 1945)
65. योजना आयोग की औद्योगिक नीति (साइं. एंड कल्चर, 18, 452, 1953)
66. क्षार उद्योग (साइं. एंड कल्चर, 19, 221, 1953)

योजना

67. भारतीय राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और सोवियत उदाहरण (साइं. एंड कल्चर, 3, 185, 1937)
68. राष्ट्रीय पुनर्निर्माण में कांग्रेस अध्यक्ष (साइं. एंड कल्चर, 4, 137, 1938)
69. स्विडन में राष्ट्रीय योजना (साइं. एंड कल्चर, 4, 669, 1939)
70. भारत का चौगुना विनाश (साइं. एंड कल्चर, 4, 499, 1940)
71. राष्ट्रीय योजना में वैज्ञानिक अनुसंधान (साइं. एंड कल्चर, 5, 639, 1940)
72. यथोचित विचार (साइं. एंड कल्चर, 6, 191, 1940)
73. भारत में राष्ट्रीय योजना बनाना (साइं. रिव्यू. 57, 440, 1940)
74. योजना एवं विकास का विभाग (साइं. एंड कल्चर, 10, 7, 1944)
75. क्षेत्रीय योजना बनाने के सिद्धांत (साइं. एंड कल्चर, 10, 177, 1944)
76. योजना बनाना या गड़बड़ करना (साइं. एंड कल्चर, 11, 225, 1945)
77. सामाजिक एवं अंतर्राष्ट्रीय योजना में विज्ञान विशेषकर भारत के संदर्भ में (नेचर, 155, 221, 1945)
78. विभिन्न देशें में योजना के रूप (साइं. एंड कल्चर, 12, 207, 1945)
79. सोवियत आर्थिक पद्धति का विकास (साइं. एंड कल्चर, 12, 301, 1947)
80. स्वतंत्र भारत की समस्याएं (ए. साइं. एंड कल्चर, 13, 358, 1947) (बी. साइं. एंड कल्चर, 13, 471, 1948
81. राष्ट्रीय योजना आयोग (साइं. एंड कल्चर, 16, 2, 1950)
82. पंचवर्षीय योजना आयोग (साइं. एंड कल्चर, 17, 51, 1951)
83. वित्तीय योजना (साइं. एंड कल्चर, 18, 557, 1953)
84. भविष्य पर पुनर्विचार (साइं. एंड कल्चर, 18, पृ. 339, 449, 557, 1953)

युद्ध और दुर्भिक्ष

85. युद्ध आ गया है (साइं. एंड कल्चर, 5, 265, 1930)

86. युद्ध में विज्ञान (साइं. एंड कल्चर, 6, 489, 1941)
78. ग्रेट ब्रिटेन तथा भारत में विज्ञान एवं युद्ध के प्रयास (साइं. एंड कल्चर, 8, 95, 1942)
88. दुर्भिक्ष, रायल कमीशन एवं व्यापार आयोग (साइं. एंड कल्चर,)10, 7, 1944)

शिक्षा

98. जर्मनी में शिक्षा की सुविधाएं (माड. रिव्यू. 31, 157, 1922)
90. भारत के लिए एक सर्वमान्य लिपि (साइं. एंड कल्चर, 1, 117, 1935)
91. शिक्षा की राष्ट्रीय योजना पर (साइं. एंड कल्चर, 4, 199, 1938)
92. स्कूलों में विज्ञान की शिक्षा (साइं. एंड कल्चर, 7, 61, 1941)
93. भारत के लिए एक सर्वमान्य भाषा (साइं. एड कल्चर, 7, 173, 1941)
94. भारत में युद्धोपरांत शैक्षिक विकास (साइं. एंड कल्चर, 9, 405, 1944)
95. भारत में शिक्षा (साइं. एंड कल्चर, 18, 1, 1952)
96. भारत में उच्च शिक्षा (साइं. एंड कल्चर, 18. 33, 1952)

राज्यों का पुनर्गठन

97. अल्पसंख्यकों की समस्याएं (हिंदुस्तान स्टैंडर्ड, कलकत्ता, 9 अगस्त, 1933)
98. राज्य पुनर्गठन आयोग की रिपोर्ट (साइं. एंड कल्चर, 21, 223, 1955)
99. राज्यों का पुनर्गठन (हिंदुस्तान स्टैंडर्ड, कलकत्ता, 6 दिसंबर, 1955)
100. स्वतंत्रता पश्चात कांग्रेस-नीति (हिंदुस्तान स्टैंडर्ड, कलकत्ता, 6 दिसंबर, 1955)
101. पूर्वी क्षेत्र में भाषागत वितरण (हिंदुस्तान स्टैंडर्ड, कलकत्ता, 7 दिसंबर, 1955)
102. पश्चिमी बंगाल को केस स्पष्टीकरण (हिंदुस्तान स्टैंडर्ड, दिल्ली, 22 दिसंबर, 1955)
103. राज्यों का पुनर्गठन (पुस्तिका, 1955)
104. तथ्य एवं आंकड़े बताते हैं कि क्यों जमशेदपुर पश्चिम बंगाल में शामिल किया जाना चाहिए (अमृत बाजार पत्रिका, 19 जनवरी, 1956)

विस्थापितों का पुनर्वास

105. पूर्वी क्षेत्र में विस्थापितों का पुनर्वास (प्रेस वक्तव्य, 28 मई 1954)
106. पूर्वी बंगाल के विस्थापितों का पुनर्वास (टी. चौधरी के साथ मिलकर

वक्तव्य, अमृत बाजार पत्रिका, 23 जून, 1954)

107. पुनर्वास में, 'जनता के सहयोग पर जोर (टी. चौधरी के साथ मिलकर प्रेस वक्तव्य, अमृत बाजार पत्रिका, 27 जून, 1954)

108. पंडित नेहरू से पुनर्वास विभाग लेने का आग्रह (टी. चौधरी के साथ मिलकर वक्तव्य, अमृत बाजार पत्रिका, 26 नवंबर, 1954)

109. ग्रामीण विस्थापितों को पश्चिम बंगाल के बाहर न भेजा जाए (चारुचंद्र राय के साथ मिलकर वक्तव्य, अमृत बाजार पत्रिका, 25 अप्रैल, 1955)

कालानुक्रम/कैलेंडर

110. महाभारत का काल (साइं. एंड कल्चर, 4, 482, 1939)

111. कैलेंडर (पंचांग) सुधार की आवश्यकता (साइं. एंड कल्चर, 4, 601, 1939)

112. कालांतर में संशोधित कैलेंडर और ग्रेगोरीय कैलेंडर (साइं. एंड कल्चर, 4, 503, 1939)

113. भारतीय कैले. का सुधार (साइं. एंड कल्चर, 18, 57, 1952)

114. भारत में कैले. का सुधार–भारतीय पंचांगों में गड़बड़ी [जर्न. राय. एस्ट्रो. सोसा. (कनाडा), 47, 109, 1952]

115. कालांतर में कैले. : वाल्टेयर के विश्वविद्यालय कालेज में सर कृष्णा स्वामी ऐयर धर्मादा व्याख्यान (उड़ीसा मिशन प्रेस, कटक 1952)

116. प्राचीन एवं मध्य युगीन काल में काल निर्धारण की विभिन्न विधियां तथा शक संवत की उत्पत्ति (जर्न. एशि. सोसा. इंडि. 19, 1, 1953)

117. विश्व कैले. योजना (साई. एण्ड कल्चर, 29, 108, 1953)

118. विश्व कैले. सुधार के लिए भारतीय प्रस्ताव (यूनेस्को का 18वां अधिवेशन, जेनेवा, 1954)

119. कालांतर में विभिन्न देशों के कैले. का इतिहास (एन.सी. लाहरी के साथ) : कैले. सुधार समिति की रिपोर्ट : भाग-सी (वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद, 1955)

संगठन, संस्थाएं

120. इंडियन इंस्टीट्यूट आफ साइंस–एक प्रेस साक्षात्कार (माड. रिव्यू. 49, 726, 1931)

121. एक इंडियन एकेडमी आव साइंस के लिए प्रस्ताव (1934 में इंडियन साइंस कांग्रेस की बंबई में हुई 21वीं बैठक के साधारण अध्यक्षीय भाषण के अंतिम अंश से)

122. वाशिंग्टन का कार्नेगी संस्थान (साइं. एंड कल्चर, 1, 130, 198, 1935)
123. कार्नेगी एजुकेशन ट्रस्ट (साइं. एंड कल्चर, 1, 130, 1935)
124. इंडियन इंस्टीट्यूट आव साइंस, बंगलौर (साइं. एंड कल्चर, 1, 523, 1936)
125. आल इंडिया रेडियो : इसकी क्या कमियां हैं और उनका कैसे सुधार किया जाए। माड. रिव्यू, 62, 683, 1937)
126. इंडियन साइंस कांग्रेस एसोसिएशन 1914—1938 (साइं. एंड कल्चर, 3, 307, 1937)
127. लार्ड मिस्टन एवं अन्य लोगों के विरुद्ध आक्सफोर्ड म्युनिसिपलिटी के लिए संघर्ष (साइं. एंड कल्चर, 6, 555, 1941)
128. लंदन के रायल सोसाइटी के अभिलेख (साइं. एंड कल्चर, 4, 91, 1938)
129. राकफेलर फाउंडेशन, 1937 का पुनरीक्षण (साइं. एंड कल्चर, 4, 99, 1938)
130. नेशनल रिसर्च कौंसिल (साइं. एंड कल्चर, 5, 571, 1940)
131. भारत में ग्लास टैक्नोलाजी के एक स्कूल की आवश्यकता (साइं. एंड कल्चर, 6, 555, 1941)
132. वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान के सरकारी संगठन में सुधार का प्रस्ताव (साइं. एंड कल्चर, 9, 1, 1943)
133. यूनिवर्सिटी कालेज आव साइंस, कलकत्ता (साइं. एंड कल्चर, 9, 19, 1943)
134. यू एस एस आर (रूस) की साइंस एकेडमी की 200वीं वर्षगांठ (साइं. एंड कल्चर, 11, 1945)
135. यू एस एस आर (रूस) अकादमी आव साइंस के अंतर्गत संस्थान (एस. एन. सेन के साथ) : (साइं. एंड कल्चर, 11, 55, 1945)
136. बंगाल की रायल एशियाटिक सोसाइटी (साइं. एंड कल्चर, 11, 451, 1946)
137. एसोसिएशन आव साइंटिफिक वर्क्स (इंडिया) : (साइं. एंड कल्चर, 12, 323, 1947)
138. नेशनल रिसर्च कौंसिल (साइं. एंड कल्चर, 33, 123, 1947)
139. डिपार्टमेंट आव साइंटिफिक रिसर्च (साइं. एंड कल्चर, 14, 42, 85 1948).
140. इंस्टीट्यूट आव न्यूक्लियर फिजिक्स (1) : आई एन पी कलकत्ता की रिपोर्ट, 1948
141. यूनिवर्सिटी ग्रांट्स क़मिटी (साइं. एंड कल्चर, 14, 215, 1948)

142. सेंट्रल जिओफिजिकल इंस्टीट्यूट की आवश्यकता (साइं. एंड कल्चर, 21, 586, 1956)
143. इंस्टीट्यूट आव न्यूक्लियर फिजिक्स (2) (साइं. एंड कल्चर, 18, 103, 195)

वैज्ञानिक अनुसंधान पर

144. उद्योग एवं वैज्ञानिक अनुसंधान (साइं. एंड कल्चर, 2, 413, 1937)
145. शक्ति-अनुसंधान एवं अन्वेपण मंडल की आवश्यकता (साइं. एंड कल्चर, 3, 405, 1938)
146. भारत में विज्ञान के आगामी 25 वर्ष (साइं. एंड कल्चर, 4, 1, 1948)
147. भारत में गत 25 वर्षो में भौतिकी की प्रगति (इंडि. साइं. कांग्रेस, एसो., रजत जयंती अंक 1938)
148. विज्ञान एवं वैज्ञानिकों के उपयोग पर (साइं. एंड कल्चर, 9, 191, 1940)
149. वैज्ञानिक अनुसंधान संगठन के आधारभूत सिद्धांत (साइं. एंड कल्चर, 9, 173, 1943)
150. वैज्ञानिक अनुसंधान संगठन के आधारभूत सिद्धांत (प्रोसि. नेश. इंस्टी. साइं. इंडि., 10, 9, 1943)
151. वैज्ञानिक अनुसंधान के सिद्धांतों पर प्रो. हिल (साइं. एंड कल्चर, 9, 308, 1944)

मानवता और अन्य पक्ष

152. पद्य एवं विज्ञान (गोल्डन बुक आव टैगोर, रामानंद चटर्जी द्वारा संपादित, 1931)
153. राष्ट्रीय जीवन में भौतिकीविद का मिशन (इंडि. जर्न. फिजि. 11, 5, 1937)
154. विज्ञान एवं धर्म (भारत की सांस्कृतिक विरासत—श्री राम कृष्ण शत वार्षिकी स्मारक ग्रंथ, वेलूरसठ, 3, 337, 1937)
155. जीवन का एक नया दर्शन (विश्वभारती न्यूज, 7, 44, 1937)
156. संस्कृति में संक्रमण (साइं. एंड कल्चर, 8, 2, 1942)
157. हमारी राष्ट्रीय संक्रांति (साइं. एंड कल्चर, 5, 5, 1939)

पुरातत्व एवं इतिहास

158. भारत में पुरातात्विक उत्खनन (साइं. एंड कल्चर, 1, 439, 1936)
159. सिंधु घाटी—5000 वर्ष पूर्व (साइं. एंड कल्चर, 5, 5, 1939)

160. ब्राह्मी तथा खरोष्ठी वर्णमाला के उद्घाचन की शतवार्षिकी (साइं. एंड कल्चर, 5, 149, 1939)
161. भारत के पुरातत्व सर्वेक्षण का कार्य [(ए) साइं. एंड कल्चर, 5, 377, 1940 : (बी) साइं. एंड कल्चर, 1940]
162. सोवियत संघ के 25 वर्ष (साइं. एंड कल्चर, 8, 195, 1942)
163. चीन का पुनर्जागरण (साइं. एंड कल्चर, 8, 195, 1942)

महान व्यक्ति

164. अलबर्ट आइंस्टाइन (सापेक्षिकता के सिद्धांत, कल. विश्व. 1920)
165. स्मरणार्थ–दिवंगत हिरेंद्रलाल मित्रा (सुशील कुमार आचार्य के साथ) : कल. रिव्यू., 1922
166. नील बोर का पचासवां जन्मदिन (साइं. एंड कल्चर, 1, 337, 1935)
167. सर यू. एन. ब्रह्मचारी (साइं. एंड कल्चर, 1, 407, 1935)
168. नेलमन के लार्ड रदरफोर्ड (डी. एस. कोठारी के साथ) : (साइं. एंड कल्चर, 3, 300, 1937)
169. जेम्स प्रिसेप (साइं. एंड कल्चर, 5, 15, 3, 19, 1949)
170. सर शाह मुहम्मद सुलेमान (साइं. एंड कल्चर, 6, 644, 1941)
171. रवींद्र नाथ टैगोर (साइं. एंड कल्चर, 7, 123, 1941)
172. सर एम. विश्वेश्वरैया (साइं. एंड कल्चर, 7, 274, 1941)
173. दिवंगत प्रो. डब्लू नेन्सर्ट (साइं. एंड कल्चर, 7, 544, 1952)
174. दिवंगत सर विलियम हेनरी ब्रैग(साइं. एंड कल्चर, 7, 544, 1952)
175. दिवंगत राय बहादुर आर. चंद्र (साइं. एंड कल्चर, 8, 65, 1942)
176. निधन सूचना–गौरीपति चटर्जी (साइं. एंड कल्चर, 8, 163, 1942)
177. सर यू. एन. ब्रह्मचारी की निधन सूचना (साइं. एंड कल्चर, 11, 447, 1946)
178. अलबर्ट आइंस्टाइन (इंडि. जर्न. मेट. एंड ज्योग्रै., 6, 1, 1955)

यात्रा

179. सोवियत रूस में मेरा अनुभव (बुकमैन, कलकत्ता, 1946)

विज्ञान रिपोर्ट

180. अंक–विज्ञान की भाषा–पुनरीक्षण (माड. रिव्यू. 50, 669, 1931)
181. सी. वी. रामन की खोज (इंडिया एंड दि वर्ड, 1933)

182. विज्ञान एवं संस्कृत (साइं. एंड कल्चर, 1, 61, 1935)
183. क्वेटा का महाभूकंप (साइं. एंड कल्चर, 1, 65, 1935)
184. परम शून्य की ओर यात्रा (साइं. एंड कल्चर, 1, 132, 1935)
185. मुक्त चुंबकीय ध्रुव का अस्तित्व (साइं. एंड कल्चर, 1, 156, 1935)
186. औषधि की सहायता में भौतिकी (पी. के. सेन चौधरी के साथ) (साइं. एंड कल्चर, 6, 49, एंड 110, 1940)
178. भारतीय वैज्ञानिक मिशन के सदस्य के रूप में अनुभव (राय. एशि. सोसा., बंगाल, 1946)
188. पारमाण्विक जगत (साइं. एंड कल्चर, 20, 1955)

अनुवाद

198. गतिमान पिंडों की वैद्युतगतिकी—ए. आइंस्टाइन, ऐन डर फिजि, 1905 (आपेक्षिकता के सिद्धांत—कल. विश्व. 1920)
190. आपेक्षिकता के सिद्धांत—एच. मिकोवस्की, 1909 (आपेक्षिकता के सिद्धांत, कल. विश्व. 1920)

(ग) पुस्तक सूची

1. प्रिंसिपल आव रिलेटिविटी (एस. एन. बोस के साथ) कलकत्ता विश्वविद्यालय, 1920
2. ट्रीटाइज ऑन हीट (बी. एन. श्रीवास्तव के साथ) इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, 1931
3. जूनियर टेक्स्ट बुक आव हीट (बी. एन. श्रीवास्तव के साथ) इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, 1932
4. ट्रीटाइज आन माडर्न फिजिक्स—जिल्द 1, (एम. के. साहा के साथ) इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, 1934
5. माइ एक्सपिरियेंस इन सोवियत रूस, बुकमैन इनका. कलकत्ता, 1947

परिशिष्ट-II नमूने के लेख

II (क) औद्योगिकीकरण का वर्णन*

(भारत में गरीबी और बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए मैं विगत कुछ दिनों से : "वृहद परिमाण औद्योगिकीकरण" का समर्थन कर रहा हूं परंतु अनेक सम्मान्य मित्रों से वार्तालाप करते हुए मुझे ज्ञान हुआ कि कुछ स्थानों में मेरे विचारों से भ्रम उत्पन्न हुआ है। कुछ लोगों का मत है कि "वृहद परिमाण औद्योगिकीकरण" सीधे धन लोलुपतावाद बढ़ाएगा, अन्य लोगों का विचार है कि इससे बेरोजगारी की समस्या दूर होने की अपेक्षा अधिक लोग नौकरी से हटा दिए जाएंगे। मुझे यह भी पता चला है कि बहुत कम लोगों को इस बात का यथार्थ ज्ञान है कि "वृहद परिमाण औद्योगिकीकरण" का अर्थ क्या है ? इसमें व्यापक रूप से प्रचलित इस मत को जोड़ दीजिए कि जितना औद्योगिकीकरण अब तक हो चुका है उसने कुछ अंशों में भारत के उस आध्यात्मिक जीवन को दूषित कर दिया है जो उसके लाखों ग्रामीण गृहों में सुरक्षित था। अतएव मैंने इस विषय पर अपने विचारों को पुनः जाग्रत करने के लिए माडर्न रिव्यू के निमंत्रण का स्वागत किया है)।

* माडर्न रिव्यू (64, 145, 1938) से पुनर्मुद्रित

अंतिम गोलमेज सम्मेलन में जब महात्मा गांधी लंदन गए, तब अन्य लोगों में एक अत्यंत रोचक व्यक्ति उनसे मिलने आए। वे और कोई नहीं बल्कि सिनेमा के सितारे प्रसिद्ध चार्ली चैप्लिन थे। यह दो अनोखे किस्म के व्यक्तियों का अनोखा मिलन था। एक महान राजनैतिक द्रष्टा थे जिनकी बात मानव जाति के पांचवें भाग के अधिकांश लोगों द्वारा निःसंकोच मानी जाती है और बाकी लोगों द्वारा आदर की जाती है, दूसरे प्रकटतया विनोदी स्वभाव के हैं, जिन्होंने अपने अभिनय से लाखों लोगों को निश्छल आनन्द एवं मनोरंजन दिया है।*

परंतु वार्तालाप विनोदपूर्ण नहीं था। चार्ली ने महात्मा से पूछा कि "मुझे ज्ञात हुआ है कि आप एक प्रकार के संयंत्रों के व्यवहार से विक्षुब्ध हैं, आप

* चार्ली चैप्लिन अन्य सितारों के विपरीत अपने चतुर व्यावहारिक बुद्धि के लिए जाने जाते हैं।

चाहते हैं कि आपके लोग गांवों में लौट जाएं, सरल जीवन व्यतीत करें और अपने जीवन की साधारण आवश्यकताओं की वस्तुओं को शारीरिक श्रम तथा साधारण मशीनों द्वारा उत्पन्न करें। क्या मैं जान सकता हूं कि आप क्यों ऐसे जीवन-दर्शन का उपदेश दे रहे हैं जो मुझे पश्चगामी प्रतीत होता है।" कहा जाता है कि महात्मा जिन्होंने कभी चार्ली चैप्लिन का नाम नहीं सुना था प्रकटतः इस प्रश्न से चकित हो गए और अपना सामान्य तर्क दिया। उन्होंने चार्ली चैप्लिन को बताया कि भारत के करोड़ों लोगों में से 90 प्रतिशत लोग नितांत गरीबी और अभाव का जीवन व्यतीत करते हैं और मशीनों को विशेषतः कपड़ा उत्पादन के लिए, लाने से अनेक शिल्पकार बेकार हो गए हैं। यदि मशीनों को बंद कर दिया जाए, तब भारत के प्राचीन शिल्पों, जैसे कताई, बुनाई आदि का गांवों में पुनः प्रवर्तन किया जा सकता है। इससे केवल लाखों बेकारों को काम ही नहीं मिलेगा बल्कि उन्हें कुछ आय और राहत भी मिलेगी। उन्होंने हाथ से कताई करने और शारीरिक श्रम के बारे में साधारणतया नैतिक मान के बारे में भी कुछ बातें कीं। इस पर चार्ली ने निम्नलिखित महत्वपूर्ण टिप्पणी की। "मुझे ज्ञात हुआ है कि आपके देश में शासक उन लोगों का ध्यान नहीं रखते जो गरीबी में रहते हैं। और जिन लोगों की गरीबी का कारण फैक्ट्री तंत्र की बुद्धि से उनके व्यवसाय की हानि है। लेकिन मान लीजिए आपकी सरकार ऐसी हो जो औद्योगिक कार्य का संगठन आधुनिक विधि से करे और यह भी देखे कि प्रत्येक व्यक्ति को यथोचित काम मिले; और यथोचित भोजन, वस्त्र एवं आवास मिले और साथ ही उसे सभी आधुनिक सुविधाएं दिए जाने का विश्वास हो, क्या तब भी आप संयंत्र के विरुद्ध होंगे ? क्या आप तब भी उत्पादन एवं वितरण की जटिल विधियों की ओर लौटने का आग्रह करेंगे ?"*

मेरा विश्वास है कि महात्मा गांधी ने इस समय इस प्रश्न का कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दिया। मुझे नहीं मालूम कि बाद में वे कोई समुचित उत्तर सोच सके। मैंने अनेक कांग्रेस नेताओं से यह प्रश्न पूछा है; उनमें से कुछ अब शासन का भार संभाले हैं, पर मुझे संतोषजनक उत्तर नहीं मिला है। कांग्रेस नेताओं के क्रिया-कलापों—उनके जो सरकार में पदभार संभाले हैं और जो इसके बाहर हैं—और उनके वक्तव्यों से ऐसा संदेह होता है कि स्वयं उनके पास भी राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिए कोई स्पष्ट क्रिया मीमांसा नहीं है। हम देखते हैं कि वे ग्राम-विकास के लिए एक ही सांस में चर्खे और हथकरघे के प्रचलन तथा जमींदारों और बिचौलियों को समाप्त करने की बात करते हैं और देश के ग्रिड-विद्युतीकरण की जिससे ग्रामीण जनता को बहते जल की ऊर्जा से सस्ती विद्युत शक्ति प्राप्त हो। संभवतया उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं है कि

* मैंने चार्ली चैप्लिन और महात्मा गांधी से मिलन के वर्णन को याददाश्त से उद्‌धृत किया है, परंतु मैं समझता हू कि मैंने कोई गलत बात नहीं कही है।

ग्रिड-विद्युतीकरण अत्यंत यंत्रीकृत और जटिल योजना है। इसके सफल संस्थापन एवं कार्यान्वयन में उद्योगपतियों, अर्थशास्त्रियों तथा तकनीकविदों के सहयोग और विपुल धनराशि लगाने की आवश्यकता है। अब सरकार को चलाने वाले नेताओं में से अनेक के वक्तव्य मुझे ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे कि प्रसिद्ध उदारवादी का कार्य जो विगत युद्ध में बनारस गया और बनारस विश्वविद्यालय को एक प्रस्ताव पास करने के लिए सहमत किया कि ''बनारस हिंदू विश्वविद्यालय ऐनिलीन रंग का निर्माण करेगा।'' हम जानते हैं कि न तो वाद-विवाद सभा के प्रस्तावों से, न जो अपने पदों पर नए प्रतिष्ठित हुए हैं उन लोगों के आशापूर्ण वक्तव्यों से किसी उद्योग का निर्माण होना है। इसके अतिरिक्त, यद्यपि कांग्रेसी तथा अकांग्रेसी प्रांतों दोनों के ही अतिरंजित वक्तव्यों से समाचारपत्र भरे पड़े हैं। फिर भी जहां तक हमें ज्ञात है इसको क्रियान्वित करने की दिशा में कोई गंभीर व्यावहारिक कदम नहीं उठाए गए हैं। राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिए जिस स्पष्ट क्रिया-मीमांसा की अतीव आवश्यकता है उसका नितांत अभाव प्रतीत होता है।

सुधारों के सफल होने के लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिए स्पष्ट कार्यक्रम का निर्णय उच्च कमान द्वारा लिया जाए। केवल प्रस्तावों से काम नहीं चलेगा, उनको कार्यान्वित करने के लिए वास्तविक कदम उठाने चाहिए। यह भलीभांति ज्ञात है कि इनमें अनेक कार्यक्रमों को तब तक क्रियान्वित नहीं किया जा सकता जब तक केंद्र में अधिकार राष्ट्र को हस्तांतरित नहीं हो जाता। लेकिन मेरा विश्वास है कि प्रांतीय सरकारें अपने सीमित अधिकारों द्वारा भी यथेष्ट प्रारंभिक कार्य कर सकती हैं।

अब चार्ली चैप्लिन द्वारा महात्मा गांधी से किए गए असुविधाजनक प्रश्न की ओर लौटते हैं। मेरा व्यक्तिगत विश्वास है कि न तो ग्रामोत्थान के उपायों, न कुटीर उद्योगों के प्रचलन एवं प्रोत्साहन और न जमींदारों तथा साहूकारों के निराकरण से ग्रामीण जनता की दशा में यथेष्ट सुधार होगा। इसके कारणों को मैंने राष्ट्रीय संस्थान में अपने अध्यक्षीय भाषण में दिया है। उनको कुछ परिवर्तन के साथ यहां उद्धृत किया जा सकता है।

''प्रत्येक मनुष्य को ज्ञात है कि भारत कृषि प्रधान देश है। 1931 की जनगणना की रिपोर्ट के अनुसार भारत की जनसंख्या का 66% भाग कृषि में लगा हुआ है, अर्थात वे कृषक हैं और उन्हें अपना जीवन खाद्यान्न-उत्पादन में बिताना पड़ता है। बाकी के 34% में से केवल 11% नगर-निवासी हैं अर्थात वे उद्योग और अन्य धंधों में लगे हुए हैं। बाकी बचे हुए 23% या तो ग्रामीण शिल्पकार व्यापारी एवं भूस्वामी हैं या ग्रामीण व्यवस्था पर निर्भर अन्य काम-धंधों में लगे हैं।

''इस बात को सभी लोग स्वीकार करेंगे कि काम-धंधों के अनुसार जनसंख्या

के वितरण से स्थिति की अस्वस्थ अवस्था प्रकट होती है। सिवाय चीन जैसे पिछड़े देशों के विश्व के अन्य किसी देश में कृषक इतने अधिक अनुपात में नहीं हैं। और क्या ये कृषक अच्छा जीवन व्यतीत करते हैं ? कुछ झोपड़ियां अधिकांश 'दरवाजे एवं खिड़कियां रहित', कुछ चटाइयां और फटे-पुराने कपड़े, अर्धभुखमरे पशु, भूख, कर्ज और बहुधा बीमारी—उन्हें केवल ये ही सुख-सुविधाएं मिलती हैं।

''कृषकों की दशा सुधारने और उनके साधारण जीवन स्तर को उठाने की व्यापक इच्छा है। पर इसकी प्राप्ति कैसे हो ? नागरिकों के गांवों में निष्क्रमण से नहीं, जैसा कि मध्यम वर्ग की बेरोजगारी से परेशान होकर कुछ लोग चाहते हैं, क्योंकि इससे भारी भीड़ भरे ग्रामीण क्षेत्र में केवल और ही दबाव बढ़ेगा और दुख कई गुना हो जाएंगे। खेती के तरीकों में अधिक दक्षता से, जो सचमुच वांछनीय है, अधिक और सस्ता खाद्यान्न मिल सकता है और जीवन की अन्य आवश्यकताएं खेती (जैसे कपास) से पूरी हो सकती हैं, परंतु यह गरीबी और बेरोजगारी की समस्या का किनारा भी नहीं छू सकता। क्योंकि अधिक दक्षता का मतलब है कि उतना ही उत्पादन वर्तमान संख्या के आधे ही लोगों द्वारा किया जा सकेगा। आजकल खाद्यान्न उगाने वालों का अनुपात 66% है। वे खाने की और अन्य वस्तुओं का उत्पादन अति आदिम तरीकों से करते हैं। यदि उन्नत वैज्ञानिक विधियों को अपनाया जाए तो अधिक राशि, सारे राष्ट्र की आवश्यकता से भी अधिक, जनसंख्या के 30% लोगों द्वारा उत्पादित की जा सकती है। इससे कृषकों की संख्या का 36% बेकार हो जाएगा। पहले से ही मध्यम वर्ग की समस्या इससे और खराब हो जाएगी।

''यदि हम और अच्छे जीवन-यापन की व्यापक लोक-भावना का विश्लेषण करें तो हमें क्या मिलेगा ? प्रत्येक व्यक्ति अपनी खाद्य आपूर्ति तो वास्तव में सुनिश्चित चाहता है पर उसकी मांगों का यह न्यूनतम भाग है। वह और अच्छे कपड़े और आवास चाहता है; अपने और अपने कुटुंब के लिए और अच्छी शिक्षा चाहता है; वह काम से अधिक आराम, परिश्रम से छुट्टी और जीवन का अधिक सुख चाहता है। इस भावना का विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि यदि इन आवश्यकताओं की पूर्ति करनी है तब औद्योगिक उत्पादनों की राशि को वर्तमान स्तर से दस से बीस गुना अधिक बढ़ानी पड़ेगी। इन सब कार्यो को संगठित करना पड़ेगा। और गांवों की जनसंख्या के एक बड़े भाग को खाद्यान्नों के उत्पादन के कार्य से हटाकर औद्योगिक कार्य में लगाना पड़ेगा। वास्तव में, गांवों में, गांवों की उन्नति का एकमात्र उपाय है कि अधिक ग्रामवासियों को शहरों में बुलाया जाए और अधिक संख्या में ऐसे शहर बनाए जाएं जिनका आधार औद्योगिक कार्य हो।''

ऊपर ''वृहद परिमाण औद्योगिकीकरण'' का संक्षेप में तर्क प्रस्तुत किया गया है। पर वृहद परिमाण औद्योगिकीकरण

का अर्थ क्या है और उसे कैसे उपलब्ध किया जाए ?

'उद्योग' शब्द का व्यापक अर्थ है "सभ्य मानव जीवन के लिए आवश्यक उपयोग वस्तुओं का संगठित उत्पादन।" इन में खाद्यान्न, कपड़ा आवासीय सामग्री, औषधियां एवं रसायन, यातायात में काम आने वाली वस्तुएं, आक्रामक तथा सुरक्षात्मक आयुध, दैनिक प्रयोग में आने वाली चीजें तथा विलास की वस्तुएं भी शामिल हैं। मानव जाति की आवश्यकताएं जिस युग में मनुष्य रहता आया है और संस्कृति के जिस चरण पर वह पहुंचा है उसके अनुसार बदलती गई हैं। संभवतया आदिम मानव के लिए भोजन एकत्र करने और रक्षा के अतिरिक्त और कोई काम नहीं था। जब मनुष्य समुदायों को बनाने लगा, गांवों तथा नगरों में बसने लगा तब उसकी आवश्यकताएं कई गुना बढ़ गई। उसे वस्त्र और आवास की तथा अपनी संपत्ति की रखवाली के लिए—आक्रामक एवं सुरक्षात्मक आयुधों की आवश्यकता पड़ी। संस्कृति की उन्नति के साथ उसकी आवश्यकताएं जटिल और विविधतापूर्ण होती जा रही हैं। संसार के किसी भी देश में, सिवाय पिछड़े देशों के, बीसवीं सदी के मनुष्य की आवश्यकताएं वही नहीं हैं जो अठारहवीं सदी के मनुष्य की थीं।

संभवतया कोई भी शिक्षित मनुष्य जब लगभग एक शताब्दी पहले सभी देशों में विभिन्न रूपों में प्रचलित उस व्यापक सिद्धांत में विश्वास नहीं करता कि कभी स्वर्ण युग था जब विभिन्न मानव समुदाय आवश्यकता, रोग एवं युद्ध से रहित शांत और संतोषमय जीवन व्यतीत करता था। इसके विपरीत लुप्त जातियों के अवशेषों के वज्ञैानिक अध्ययन से हम लोग पूर्वकाल की एक दूसरी ही तस्वीर से परिचित हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन, यहां तक कि प्रागैतिहासिक मानव समुदाय भी रोगों, महामारियों एवं युद्धों से बरी नहीं थे; यहीं नहीं, वर्तमान काल की अपेक्षा जीवन बहुत कम सुखी था। मानव के सारे सतरंगी इतिहास में से 'प्रगति' की भावना उभरती है। मनुष्य का विकास पग पग करके संस्कृति की ओर संगठित तथा सामूहिक प्रयास और औद्योगिक उत्पादन की नई विधियों के आविष्कार से हुआ है, जिसने उसे भूख, जलवायु की विषमताओं और रोगों के विरुद्ध अधिकाधिक सुरक्षा प्रदान की है। इतिहास से यह भी प्रकट होता है कि जब कोई समुदाय 'प्रगति' की भावना में विश्वास नहीं करता है तब गतिहीन बन जाता है और उसे अन्य प्रगतिशील राष्ट्रों के विरुद्ध अपनी स्वाधीनता तथा वैयक्तिकता की रक्षा करना असंभव हो जाता है। और वह शीघ्र या देर से इतिहास से विलुप्त हो जाता है। संस्कृति के युगों का वर्गीकरण वैज्ञानिक मनुष्य ने औद्योगिक उत्पादन की विधियों के उपयोग के अनुसार किया है। इस प्रकार प्राचीन प्रस्तर काल के विभिन्न युग हैं, जब चकमक पत्थर के अनगढ़ टुकड़े का प्रयोग मानव द्वारा

रक्षा और आक्रमण के लिए, भोजन बनाने के लिए और अन्य कामों के लिए किया जाता था। इन युगों के बाद नवीन प्रस्तर काल आया जब मनुष्य पालिश किए गए पत्थरों के औजारों, (हथौड़े, कटारें, सुइयां और छुरियां, गदा आदि) का उपयोग करने लगा। प्राचीन सुमेरी, मिस्री और संभवतः सिंधुघाटी सभ्यता के प्राचीनतम स्तर के लोग केवल तांबे के औजारों का प्रयोग करते थे। ताम्रकाल के बाद कांस्य काल आया जब औजार कांसे के बनाए जाते थे, जो बांबे से कठोरता, टिकाऊपन और प्रबलता में अत्यधिक उत्तम हैं। होमरीय यूनानी और बाद के सिंधुघाटी के लोग सभी कांसे के औजारों और युद्ध के हथियारों का प्रयोग करते थे। कांस्य काल के बाद आधुनिक लौह काल 1200 ई.पू. के लगभग आया। परंतु तकनीक की नई प्रावस्थाएं संसार में लौह काल बहुत बाद में आई। वास्तव में जब स्पेनी अमेरिका में आए तो उन्हें दो अत्यंत सभ्य समुदाय मिले जो साम्राज्यों में संगठित थे—मेक्सिको में ऐजूटेक और पेरू में इंकास। परंतु इन लोगों के पास केवल तांबे के औजार थे। इनके पास न तो चक्के वाले वाहन थे और न घरेलू पशु, सिवाय ऊंटों की एक विकृत किस्म के।

कांस्य युग के बाद 1200 ई.पू. के लगभग लौह युग आया। और कुछ लोगों के अनुसार यह युग अभी चल रहा है। अब हमारे सब औजार लोहे और इस्पात के बनते हैं, यद्यपि औद्योगिक उत्पादन की आधुनिक विधि आदिम लौह युग विधियों से वास्तव में इतनी अधिक जटिल और उन्नत है कि इस युग को एकदम नया नाम देना उपयुक्त होगा।

इतिहास को ध्यानपूर्वक पढ़ने से ज्ञात होता है कि जिन मानव समुदायों ने निम्नकोटि के औजारों और तकनीकों का उपयोग किया वे इनके उन्नत किस्मों के उपयोग करने वालों द्वारा सदा हराए और दास बनाए गए।

प्राचीन प्रस्तर युग का मनुष्य नवीन प्रस्तर युग के मनुष्य से संघर्ष करने में समाप्त हो गया जो स्वयं ताम्र औजारों को प्रयोग करने वालों के सामने विलुप्त हो गया। ये लोग भी लौह-औजारों को प्रयोग करने वालों से हार गए। ऐतिहासिक काल में ही मेक्सिको में ऐजूटेक लोगों का दुखद इतिहास इस शिक्षा को प्रदर्शित करता है। जब मुट्ठी भर घुड़सवार स्पेनियों ने बंदूक और तलवारों से लैस होकर मैक्सिको पर आक्रमण किया तब लड़ाकू ऐजूटेक योग्य नेतृत्व के बावजूद स्पेनियों के सामने न टिक सके क्योंकि उनके हथियार केवल तांबे की तलवार, कटारें और भाले थे। नई दुनिया के ताम्र युग के मनुष्य मुट्ठी भर लौह युग के आदमियों से पूरी तरह हार गए क्योंकि उनके पास अधिक उन्नत तकनीक, औजार एवं संगठन था। इतिहास की उच्च नैतिक शिक्षा यही है कि यदि कोई मानव समुदाय औद्योगिक उत्पादन की नवीनतम विधियों से लाभ उठाने में चूक जाता है

तब वह उन्नत तकनीक वाले समुदायों के साथ संघर्ष में अपनी स्वतंत्रता एवं वैयक्तिकता की रक्षा किसी प्रकार नहीं कर सकता।

औद्योगिक उत्पादन की नई विधि

आजकल विश्व के अधिकतम उन्नत देशों द्वारा प्रयोग की जाने वाली तकनीक इतनी जटिल है कि इसे पुरातन लौह युग संस्कृति का अनुवर्ती कहना बहुत गलत होगा। यह संस्कृति में पूर्णतः नवीन प्रावस्था है जिसकी विशिष्टता केवल औद्यौगिक उत्पादन की नवीन पद्धति ही नहीं है वरन मानव जीवन का एक नवीन दर्शन भी। इस नवीन युग को विविध नामों से पुकारा जाता है, जैसे विगत पुरातकनीक युग की विपरीतता में नूतन तकनीक युग और कभी कभी तृतीय क्रांति (गार्डनचाइल्ड) जिसकी विगत शताब्दी की औद्योगिक क्रांति केवल पूर्वगामिनी थी। परंतु यह अधिक अच्छा होगा यदि वर्तमान युग को वैज्ञानिक काल कहा जाए क्योंकि वर्तमान काल में मानव कार्य इस धारणा से उत्पन्न होता है कि विज्ञान के अनुप्रयोग से हम अधिक अच्छे जीवन स्तर को या व्यापक रूप से अधिक अच्छे संसार को पा सकेंगे। प्रगति की धारणा जो आधुनिक युग की प्रेरक शक्ति है एक शताब्दी पहले तक विद्यमान नहीं थी, जब प्रत्येक देश में धार्मिक पांडित्य प्रदर्शन द्वारा अंधकारमय भविष्य चित्रित किया जा रहा था, उदाहरणार्थ विश्व का पतन या ऐसी विपत्ति जो मानव समाज को डुबो देगी।

नूतन युग की सम्यक धारणा के लिए हमें संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, इंग्लैंड या जर्मनी जैसे देशों में किस प्रकार का जीवन यापन किया जा रहा है और इन देशों की वर्तमान औद्योगिक उत्पादन विधि पर दृष्टिपात करना चाहिए और इन्हीं देशों में दो शताब्दी पूर्व के जीवन और उद्योग की गति से उसका अंतर देखना चाहिए। अभी हमें एक युग से दूसरे में संक्रमण से उत्पन्न सामाजिक तथा राजनैतिक उथल-पुथल की अनदेखी करनी चाहिए। दो शताब्दी पूर्व इन देशों में औद्योगिक कर्मचारी (कृषकों सहित) व्यवसायानुसार अधिकतर श्रेणियों में संगठित थे, जैसे किसानों, दासों, बुनकरों, कुम्हारों, राजगिरों, लुहारों और मछुआरों आदि में। व्यवसाय साधारणतया पिता से पुत्र को मिलते थे और यदि व्यवसाय के रहस्य कुछ होते थे तो कुटुंबों तक सीमित रहते थे। काम व्यक्तिपरक होता था या अधिक से अधिक कुटुंब-संगठन के रूप में। सब मिलाकर, प्रत्येक देश, लगभग प्रत्येक क्षेत्र भोजन, कपड़ा, आवासीय सामग्री आदि जैसे जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं के लिए आत्म निर्भर था और केवल उन्हीं वस्तुओं का आयात करता था जो स्थानीय रूप से उपलब्ध नहीं होते थे। कुछ व्यवसायों में कुछ सीमा तक संगठन था जैसे व्यापारियों, जो बाहरी देशों से व्यापार करते थे अथवा खनिकों के व्यवसाय में जो मानव जीवन के लिए आवश्यक धातुओं और रसायनों का उत्पादन करते थे। लोगों

की आवश्यकताएं कम थीं, वे अधिक यात्रा नहीं करते थे और स्वास्थ्य विज्ञान संबंधी विचार बिल्कुल उतने ही खराब थे जैसे आजकल के किसी पिछड़े हुए पूर्वी देश में हैं।

जो लोग उपहास करें कि हम मानव जीवन के केवल भौतिकवादी पक्ष की बात कर रहे हैं उन्हें याद रहे कि हमारे देश के मनीषियों के औद्योगिक उत्पादन की सुरक्षा पर पश्चिमवासियों की अपेक्षा अधिक जोर दिया था। भारत में व्यावसायिक श्रेणियां सुदृढ़ जातियों में परिणत हो गई जिसके लिए मिथकों द्वारा दैवी विधान की कल्पना कर ली गई और जिन लोगों ने अपने व्यवसाय को बदल देने का साहस किया उन्हें केवल कल्पित नरक की ज्वाला का ही नहीं वरन सांसारिक दंड का भी भय दिखाया गया। अन्य देशों में यद्यपि वास्तव में बहुत कम लोगों ने अपने व्यवसाय को बदला। परंतु उनके इस कार्य के विरुद्ध कोई नैतिक विधान नहीं था।

18वीं शताब्दी के आरंभ से वैज्ञानिक आविष्कारों ने पश्चिम में औद्योगिक उत्पादन और मानव जीवन की राह को बिल्कुल बदल दिया। उत्पादन की विधि और साधारण मानव जीवन पर वाष्प इंजन, वैद्युत इंजन और विभिन्न प्रकार के तेल इंजनों के प्रभाव पर विचार करना अनावश्यक है। अब तो मानव जीवन के लिए आवश्यक सभी वस्तुएं जैसे कपड़े, आवासीय सामग्री, दवाएं, रसायन, आयुध आदि शक्तिशाली मशीनों द्वारा फैक्ट्रियों में उत्पादित होते हैं। उत्पादन पुरातकनीकी विधियों द्वारा उत्पादित वस्तुओं से अधिक अच्छे, सस्ते और बहुतायत से होते हैं। आजकल साधारण मनुष्य भी विलास की ऐसी सामग्री क्रय कर सकते हैं जो एक शताब्दी पहले केवल राजकुमारों को उपलब्ध थीं। रेलवे, भाप के जहाज और मोटर कार द्वारा दूर-दराज की यात्रा न केवल संभव वरन सुखद भी हो गई है। इसके कारण विभिन्न लोगों का अभूतपूर्व मात्रा में आपस में मिलना सरल हो गया है और संसार के सुदूर कोनों में सामग्री ले जाना संभव हो गया है। इंग्लैंड जैसे देशों में ग्राम्य जीवन लगभग समाप्त हो रहा है और सारे ग्रामीण क्षेत्र शीघ्रता से बड़े बड़े शहरों के उपनगर बनते जा रहे हैं और शहरों, सड़कों और घरों में द्रुत गति से परिवर्तन हो रहे हैं। हम चाहें या न चाहें नवीन पद्धति आ ही गई है।

संगठन की समस्याएं

परंतु नई पद्धति ने राष्ट्रों पर बोझ भी अधिक डाल दिया है। आधुनिक मनुष्य की आवश्यकताएं इतनी अधिक हैं कि उनके उत्पादन के लिए बहुत अधिक काम की जरूरत है। पश्चिमी देशों में, जिन्होंने नूतन तकनीकी विधियों को अपना लिया है, गणना से मालूम होता है कि जीवन की सभी आवश्यकताओं को उत्पादित करने के लिए प्रति मनुष्य 1800 कार्य के मात्रकों की जरूरत है। पर यदि कार्योत्पादन मुख्यतः मानव तथा पशु बल पर निर्भर हो, जैसा कि पुरातकनीक देशों में होता था, तब हमें

90 मात्रकों से अधिक नहीं प्राप्त हो सकेगा। अतएव नूतन तकनीक के मनुष्य को परातकनीक मनुष्य से 20 गुना शक्ति की जरूरत है। उन्नत देशों में यह शक्ति प्राकृतिक शक्तियों के अनुप्रयोग से प्राप्त होती है, जैसे कोयले, तेल और जल-शक्ति के प्रयोग से। अलंकारिक भाषा को प्रयोग करें तो पश्चिमी देशवासी ने प्राकृतिक शक्ति के नियंत्रण से 20 दास निरंतर अपने कार्य के लिए पा लिया है जबकि प्राचीन विधियों का उपयोग करने वाले देशों को मानव और पशु श्रम पर निर्भर रहना पड़ता है जो औसतन एक दास के श्रम के बराबर होता है।

देश के शक्ति-साधनों के पूर्ण उपयोग और औद्योगिक उत्पादन के कार्य के संगठन के कारण सभी आधुनिक शासनों पर बड़ा तनाव है। यद्यपि शक्ति के साधनों का उपयोग और मिलों का कार्य निजी लोगों द्वारा प्रारंभ किया गया था परंतु अब यह न्यूनाधिक सरकारों का कार्य हो गया है।

आइए हम इंग्लैंड जैसे देश पर विचार करें और देखें कि कैसे वह अपने शक्ति स्रोतों का नियंत्रण और कार्य का संगठन करता है।

इंग्लैंड में विद्युत उत्पादन ग्रिड पद्धति से राज्य द्वारा नियंत्रित होता है जिसका प्रबंध सरकार द्वारा नियुक्त विद्युत आयुक्त करते हैं। मोटर कारों, जहाजों के इंजनों आदि के लिए द्रव इंजन की आवश्यकता होती है। इसके लिए आजकल इंग्लैंड को बाहरी आपूर्ति पर निर्भर रहना पड़ता है, जो वर्तमान समय में ब्रिटेन के नियंत्रण में है पर आगामी युद्ध में रोका जा सकता है। अतएव ब्रिटेन की सरकार ने सरकारी कोष में काफी हानि सहकर निजी संपत्तियों को कोयले से द्रव ईंधन उत्पादित करने के लिए आर्थिक सहायता दी है।

इंग्लैंड की शक्ति का एकमात्र स्रोत कोयला है। उसके पास नाममात्र को भी जल-शक्ति नहीं है, न ही तेल है। यदि कोयले की आपूर्ति बंद हो जाए तब इंग्लैड औद्योगिक देश के रूप में अपने प्रमुख स्थान को खो बैठेगा। अतएव सरकार को कोयले के अपव्यय के विरुद्ध ईंधन नियंत्रण एवं अनुसंधान बोर्डों की स्थापना द्वारा कठोर और प्रभावी कदम उठाने पड़े हैं। वास्तव में कोयला अधिकतर "विनिर्मित वस्तु" बन गया है और इससे उपलब्ध ऊर्जा की प्रत्येक कैलारी का उपयोग किया जाता है।

"शक्ति उद्योग" औद्योगिक उत्पादन की वर्तमान पद्धति की कुंजी है परंतु वैज्ञानिक अनुसंधान के कारण लगातार उन्नति के सामने और उद्योग भी सरकारी संरक्षण के बिना प्रतिस्पर्धा में टिक नहीं सकते। परंतु सर्वोत्तम प्रकार का संरक्षण 'दक्षता' है और इसकी रक्षा सरकार राष्ट्रीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान के संगठन द्वारा करती है। इस संस्था का ध्येय उत्पादन की आधुनिक विधियों के वैज्ञानिक अध्ययन और नवीन उद्योगों की विधि और निर्माण को अधिक अच्छा बनाने के

लिए अद्यतन वैज्ञानिक ज्ञान का अनुप्रयोग है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक बड़ी कंपनी के इसके अपने अनुसंधानकर्ता हैं।

उत्पादन की जिस नूतन तकनीक का चित्र ऊपर दिया है यद्यपि वह अधूरा है फिर भी पाठकों को संभवतः इस विधि की प्राचीन पुरातकनीक विधि की तुलना में अतुलित दक्षता का कुछ अनुमान तो देगा ही। फिर भी कुछ नेता उसी विधि की ओर लौटना चाहते हैं। नूतन तकनीक मानव के आक्रमण के सामने पुरातकनीक मानव के जीवित रहने की उतनी ही कम संभावना है जितनी स्पेनियों के सामने ऐजूटेकों की थी। इंग्लैंड, जर्मनी, फ्रांस, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा अन्य पश्चिमी देश सुविधाजनक स्थित में हैं क्योंकि नूतन तकनीकी विधियों को वहां के अग्रणियों ने परिपक्व बनाया था। इसलिए सरकार ने उन कंपनियों के साथ उत्तरदायित्व में हाथ बंटाया है जिन्होंने सबसे पहले वैज्ञानिक अनुसंधानों का लाभ उठाया है और नए उद्योग का निर्माण किया है या किसी पुराने को नूतन तकनीक विधि में परिणित किया है। पर ऐसा रूस और जापान के संबंध में नहीं हुआ है। 1868 के लगभग जापान को विश्वास हो गया कि यदि उसे बड़े राष्ट्र की श्रेणी में आगे आना है तब उसे पुरातकनीक विधियों को छोड़ कर नूतन तकनीक विधियों को अपनाना पड़ेगा। इस लक्ष्य की पूर्ति वहां के नेताओं के उत्साह, उद्योग, और दूर-दर्शिता से हुई जिसमें वहां की शक्तिशाली केंद्रीयभूत राष्ट्रीय सरकार से सहयोग मिला। परंतु जापान अपने लघुकुटीर उद्योगों को पुनःसज्जित कर प्राचीन जीवन को भी कुछ सीमा तक सुरक्षित रख सका है। सस्ती विद्युत शक्ति को प्रदान करने से यह संभव हुआ है क्योंकि इससे जापानी कार्मिक अपने कुटीरों में ही आधुनिक मशीनों से काम कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त अनुसंधान के संगठन, कच्चे माल की आपूर्ति और निर्मित उत्पादों की बिक्री द्वारा उसे अपने श्रम का उचित मूल्य मिलने का विश्वास रहता है। परंतु जापानी हथकरघे या चर्खे से काम नहीं करता है, वह टोपाला करघे का उपयोग करता है जो बिजली से चलता है। उसका औद्योगिक उत्पादन भारतीय कार्मिक से 10 या 12 गुना अधिक होता है। अनुमान किया जाता है कि जापान के औद्योगिक उत्पादन का आधे से अधिक भाग कुटीरों से आता है।

आज हमारी आंखों के सामने ही रूस अपने महान प्रयास से उत्पादन की पुरातकनीक विधि से नूतन तकनीक विधि में परिवर्तित हो रहा है। ज़ार के रूस के ह्रास का मुख्य कारण अपने देश को नवीन उत्पादन विधियों के लिए संगठित करने में उनके नेताओं की असफलता थी। आधुनिक जीवन की सभी आवश्यकताओं के लिए वे विदेशी धन और विशेषज्ञों पर निर्भर थे।

जिन देशों ने अपने को नई उत्पादन विधियों के अनुसार संगठित करने और अपने सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन को तदनुसार समंजित करने में देर

की है जैसे, चीन और अबिसीनिया आदि उनका आधुनिक इतिहास क्या मानव इतिहास के उस महान नैतिक शिक्षा के अच्छे उदाहरण नहीं हैं जिन पर इस लेख में इतना जोर दिया है।

अतएव भारत के सामने जो काम है वह है अपने औद्योगिक जीवन को उत्पादन की नूतन तकनीकी विधि के अनुसार संगठित करना। अन्य देशों के विपरीत यदि संपूर्ण भारत को लिया जाए (अलग अलग भागों में नहीं) तो यह तीन देशों में से एक है (दूसरे दो रूस और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका हैं) जिनके पास शक्ति, खनिजों और कृष्यभूमि के सभी साधन हैं, जिनके द्वारा वह औद्योगिक उत्पादन की नई विधियों को पाने में समर्थ हैं। जब तक यह नहीं किया जाता भारत अपनी गरीबी और बेरोजगारी की समस्या को कभी हल नहीं कर सकता और न उज्जवल भविष्य की आशा कर सकता है। मैसूर के अवकाश प्राप्त दीवान, सर एम. विश्वेश्वरैया ने अपनी पुस्तक ईकानोमिक प्लैनिंग में कुछ सीमा तक पहले ही संकेत किया है कि कैसे यह क्रांति लाई जा सकती है। पर सभी मानव कार्यो का स्रोत विश्वास है और यदि हम जीवन की प्राचीन विधियों के आकर्षण की ओर चुपचाप ध्यान लगाए रहें तब हम कभी उस कार्य प्रणाली का निर्णय नहीं कर सकेंगे जो हमारी राष्ट्रीय अभिलाषा की ओर अग्रसर करेगा।

II (ख) न्यूक्लीय भौतिकी संस्थान*

इस अवसर पर मैं आपको सूचित करना चाहता हूं कि कुछ दिनों पहले भारत सरकार के परमाणु ऊर्जा विभाग से हम लोगों को सूचना मिली है कि इस संस्थान के विकास की पंचवर्षीय योजना को स्वीकृति प्रदान की गई है। हमारे विकास का यह दूसरा चरण है। हम लोग कोई बड़ी आश्चर्यजनक चीज नहीं प्रारंभ कर रहे हैं बल्कि कुछ वर्षो पहले से जो अनुसंधान एवं शैक्षणिक कार्रवाई चल रही थी उसी की संपुष्टि मात्र की जा रही है। इन अनुदानों से तकनीकी कर्मचारियों के अतिरिक्त चार प्रोफेसरों और कुछ रीडरों एवं प्राध्यापकों को रखना संभव हो जाएगा। हमारे उपस्करों में बड़ी मात्रा में बढ़ोतरी होगी।

हम लोगों ने निम्नलिखित विधाओं पर ध्यान केंद्रित करने का निर्णय किया है–

(ए) कण त्वरक

हम लोगों के पास पहले से एक साइक्लोट्रान है। अब हम एक इलेक्ट्रान सिन्कोट्रान संस्थापित करना चाहते हैं और इसके लिए योजना बनाई जा रही है।

(बी) शुद्ध न्यूक्लीय भौतिकी जिसमें अल्फा, बीटा और गामा स्पेक्ट्रमिकी, न्यूक्लीय प्रेरण तकनीक और सूक्ष्म तरंग स्पेक्ट्रमिकी होगी।

(सी) इलेक्ट्रानिकी और रेडियो (यंत्रीकरण)

(डी) न्यूक्लीय रसायन

(ई) सैद्धांतिक न्यूक्लीय विज्ञान

(एफ) न्यूट्रान भौतिकी

(जी) पुरा एम.एससी. अध्यापन अनुभाग

न्यूक्लीय भौतिकी संस्थान में एक जैविक भौतिकी अनुभाग है जिसमें दो इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी हैं। एक प्रावस्था सूक्ष्मदर्शी और अन्य मूल्यवान उपस्कर हैं। आशा की जाती है कि इसे बढ़ा कर एक अलग संस्थान बना दिया जाएगा। हमारे जैव-भौतिकी के प्रोफेसर डा. एन. एन. दास गुप्ता पश्चिमी जर्मनी के

* साइंस एंड कल्चर 21, 586, 1956 से पुनः मुद्रित : संस्थान के विद्यार्थी सभा भवन (स्टुडेन्ट्स हाल) की नींव रखने के समारोह के अवसर पर भाषण।

महामहिम राजदूत और भारत सरकार की उदारता से गतवर्ष यूरोप की अध्ययन यात्रा पर जा कर कम से कम सत्रह जैव-भौतिकी के प्रसिद्ध केंद्रों के संगठन का इंग्लैंड, जर्मनी तथा फ्रांस में अध्ययन कर सके। इन अध्ययनों के आधार पर उन्होंने मेडिकल फिजिक्स के एक संस्थान की योजना बनाई है और यह योजना वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अुनसंधान वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद की जैव-भौतिकी समिति के पास भेज दी गई है। वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद के अध्यक्ष हमारे मुख्यमंत्री हैं। हमें आशा है कि इस संस्थान की स्थापना बिना देर किए हो जाएगी और न्यूक्लीय भौतिकी संस्थान में यह जो स्थान घेरे हुए हैं वह खाली हो जाएगा जो स्वयं संस्थान के विस्तार के लिए आवश्यक है।

जैसा कि आपको ज्ञात है न्यूक्लीय विज्ञान में बहुत अधिक व्यय होता है यदि हम केवल विज्ञान मात्र में ही संलग्न रहें और तकनीक में न उलझें तब भी। विगत दिनों आर्थिक कठिनाइयों के कारण हमारे काम में बड़ी बाधा पड़ी है पर भाग्यवश मान्यवर प्रधानमंत्री जी के व्यक्तिगत रुचि लेने के कारण अब दूर हो गई है। हम लोग अपेक्षाकृत दूसरों का अनुकरण कर रहे हैं पर यह कहा जा सकता है कि हम लोगों के कुछ कार्यों को अंतर्राष्ट्रीय जगत से सराहना प्राप्त हुई है। इस संबंध में आपको एक-दो घटनाएं बताता हूं।

(ए) डा. बी.डी. नाग चौधरी के अंतर्गत त्वरित्र विभाग हमारा सब से पुराना विभाग है और 40" साइक्लोट्रान संस्थापित करने के अतिरिक्त जो स्वयं में बड़ा कठिन काम है, इसने एक नए सिद्धांत पर न्यूट्रान स्पेक्ट्रम मापी निर्मित किया है जो एक विशेष ऊर्जा के न्यूट्रानों को विलंबित संपाती तकनीक द्वारा अलग कर देता है। परंतु हमारी सुविधाओं की कमी के कारण वही काम अमेरिकियों द्वारा विकसित किया गया है। यद्यपि हमारे अमेरिकी समकालीनों को यह बहुत बाद में समझ में आया। देश में यदि अधिक तकनीकी विकास होता तो इस विशिष्ट विकास में हम औरों से आगे होते। अब यह कार्य न्यूट्रान प्रग्रहण प्रतिक्रिया के संबंध में किया जा रहा है। एक अन्य तकनीक जिसका त्वरित्र अनुभाग में विकास किया गया है वह है रेडियो आवृत्ति विधियों द्वारा अधिक एक दैशिक या आवेग वोल्टता पास करना। यह पारंपरिक विधि है लेकिन त्वरित्रों में अधिक धारा आवेश कराने के लिए और अधिक धारा निम्न ऊर्जा त्वरित्रों के लिए जिन्हें कुछ प्रकार के अध्ययन के लिए प्रयोग किया जाता है, उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

प्रयोगशाला के इस विभाग ने 'पास स्पेक्ट्रम मापियों' में भी रुचि ली है और एक का निर्माण उच्च संहतियों के संहति विश्लेषण और निम्न संहतियों के अल्प राशियों के आइसोटोपों को अलग करने के लिए द्विफोक्सी बीटा किरण स्पेक्ट्रोमीटरों के समान सिद्धांत

पर काम कर रहा है।

(बी) न्यूक्लीय भौतिकी विभाग ए.के. साहा के तत्वावधान में न्यूक्लीय प्रेरण पर β एवं γ स्पेक्ट्रोसकोपी पर कर रहा है और जी.एन. सरकार एम. एससी. कार्यशाला सुपरिंटेंडेंट के साथ सूक्ष्म तरंग स्पेक्ट्रोसकोपी पर। हम लोगों के एक प्राध्यापक श्री टी.पी. दास ने जिन्होंने न्यूक्लीय प्रेरण पर कार्य किया है, डी.फिल डिग्री के लिए शोध-प्रबंध प्रस्तुत किया है। उसके एक परीक्षक जो एक अमेरिकी शोधकर्ता हैं, डाक्टरेट डिग्री के लिए सिफारिश करते हुए कहते हैं : "उनका शोध प्रबंध संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के लगभग तीन पी. एच-डी. शोध प्रबंध के बराबर है। यह केवल कलेवर में ही बड़ा नहीं है वरन नियमित एवं श्रेष्ठ प्रकार का कार्य है।" यह कार्यकर्ता कभी प्रयोगशाला के बाहर नहीं गया है और इसने अपना सब काम यहीं प्रयोगशाला में किया है।

(सी) **इलेक्ट्रानिकी एवं रेडियो (यंत्रीकरण)** श्री बी.एम. बैनर्जी के अंतर्गत इलेक्ट्रानिकी रेडियो अनुभाग अन्य सभी अनुभागों इलेक्ट्रानिकी रेडियो उपस्कर बनाने के काम में साधारण परामर्शदाता का काम करता है। इसके अतिरिक्त यह उनके अध्यापन एवं अनुसंधान कार्य में भी भाग लेता है। श्री बैनर्जी ने एक नए प्रकाश का आयनमंडलीय रेकार्डर बनाया है जिसमें साधारण रेकार्डर की अपेक्षा दस गुना विभेदन क्षमता होती है। इसे सर एडवर्ड एल्पीटन जैसे अधिकारी वैज्ञानिक से अनपेक्षित एवं स्वतः स्फूर्त प्रशंसा मिली है। इस उपकरण की सहायता से सर्व श्री आर.एन. रे और जे. के. दास के आयनमंडल से परावर्तित सिग्नलों का ध्रुवीकरण दीर्घवृत्तों का फोटो लिया है और आयनमंडल संघट आवृत्ति और इलेक्ट्रान घनत्व प्राप्त करने की एक नई विधि निकाली है।

जैसा हम चाहते हैं वैसा अनुभाग (डी) और (ई) का विकास अब तक नहीं हुआ है। इसका कारण जगह और कर्मचारियों की कमी है। न्यूक्लीय रसायन अनुभाग (डी) श्री बी. सी. पुरकायस्थ के अंतर्गत रख दिया गया है। जिनका प्रशिक्षण प्रो. पी. आर. रे और प्रो. पैनेथ के अंतर्गत हुआ। इस अनुभाग का नाम न्यूक्लीय रसायन रखे जाने का विरोध हुआ है। परंतु इस विरोध के दो महीने बाद न्यूक्लीय रसायन नाम का एक जर्नल प्रकाशित होने लगा अतएव हम लोग इसी नाम को रखे हुए हैं।

हमारे विकास के लिए सैद्धांतिक भौतिकी अनुभाग (ई) अनिवार्य है। यद्यपि प्रो.ए.के. साहा और उनके शिष्यों द्वारा यथेष्ट सैद्धांतिक काम का प्रकाशन किया है फिर भी हम लोग इस भोग को यथोचित रूप से स्थापित करने में समर्थ नहीं हुए हैं। (एफ) हमारे कार्यक्रम में अभाग्यवश एक बात में कमी रह गई है। न्यूट्रान भौतिकी न्यूक्लीय भौतिकी का एक अति महत्वपूर्ण भाग है। यह मौलिक भौतिकी को न्यूक्लीय ऊर्जा विकास का आधार प्रदान करता है। संयुक्त राज्य अमेरिका और रूस में यह माना जाता है कि अनुसंधान एवं शैक्षणिक

प्रयोगशालाओं में अनुसंधान रिऐक्टर होने चाहिए जिनसे काफी बड़ी मात्रा में न्यूट्रान मिल सके।

हम न्यूक्लिआनिक्स के नवंबर अंक से निम्न पैरा उद्धृत करते हैं–

प्रत्येक देश को जिसका अंतिम उद्देश्य न्यूक्लीय शक्ति प्राप्त करना है अनुसंधान रिऐक्टर के चरण से गुजरना पड़ेगा। अधिक उन्नत देशों में यह पहले से ही हो रहा है। न्यूक्लीय शिक्षा में रिक्तता के कारण अन्य जगहों में छोटे छोटे रिऐक्टर के अनुभव की आवश्यकता है। आगामी कुछ वर्षों में 37 अनुसंधान रिऐक्टरों की आवश्यकता होगी जिसमें से आधे से अधिक क्रय द्वारा प्राप्त किए जाएंगे।

सच पूछिए तो न्यूक्लिआनिक्स के नवंबर अंक ने प्रकाशित किया है कि बहुत बड़ी संख्या में अनुसंधान रिऐक्टर जिनमें से प्रत्येक पर 50 लाख रुपए की लागत आएगी संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के विश्वविद्यालयों में आपसी समझौते के अनुसार संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के मित्र देशों जैसे पाकिस्तान में स्थापित किए जा रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की सरकार इन रिऐक्टरों की कीमत का 50% लेगी। हमें हम बात का अधिक ज्ञान नहीं है कि सोवियत रूस में क्या हो रहा है पर यह महत्वपूर्ण है कि जब मैं न्यूक्लीय विज्ञान कान्फरेंस की बैठक में 25 मार्च से जुलाई 1955 तक भाग ले रहा था तब मुझे बताया गया कि सोवियत रूस ने 2500 किलोवाट का अनुसंधान रिऐक्टर बनाया है जिन्हें वह अपने उन विश्वविद्यालयों में वितरित करेगा जिनमें न्यूक्लीय विद्यालय का अध्यापन किया जाता है। उन्होंने अपने मित्र देशों यथा बलगेरिया, रूमानिया तथा हंगरी को भी आश्वासन दिया है कि उनको भी एक एक ऐसे रिऐक्टर देंगे। वास्तव में सोफिया विश्वविद्यालय के प्रो. नद्जकोव ने एक ऐसे रिऐक्टर को, जिसकी स्थापना पिछले 6 महीनों से हो रही थी, देखने के लिए मुझे आमंत्रित किया। अब तो वह पूरा कर लिया गया होगा।

न्यूक्लीय भौतिकी संस्थान में ऐसे रिऐक्टर के लिए कार्यकारियों का एक अच्छा सूक्ष्म केंद्र है। डा. एस.एन. घोषाल जिसका प्रशिक्षण कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में प्रो. सिगरे के अंतर्गत हुआ था जो वर्षो से रिऐक्टर भौतिकी पर व्याख्यान दे रहे हैं। श्री ए.पी.पैट्रो को, जो हमारे एक अनुसंधान स्कालर थे, नार्वे की सरकार द्वारा एक अनुसंधान छात्रवृत्ति मिली है। वे ओसलो के समीप कानेलर में संयुक्त डच नार्वेजियन रिऐक्टर परियोजना में न्यूट्रान भौतिकी में अनुसंधान कर रहे हैं। श्री एम.के. बैनर्जी, हमारे एक युवा प्राध्यापक को बंगाल सरकार द्वारा छात्रवृत्ति दी गई है ताकि वे प्रो.ई. वैगनर के अंतर्गत रिऐक्टर भौतिकी का अध्ययन करें। प्रो.ई. वैगनर अब प्रिस्टन विश्वविद्यालय के पामर भौतिकी प्रयोगशाला में प्रोफेसर हैं। यहां यह बताना उचित होगा कि प्रो. ई. वैगनर ओक रिज राष्ट्रीय प्रयोगशाला के प्रथम अध्यक्ष थे और इस दिशा में अनेक

धारणाओं के लिए उत्तरदायी हैं और रिऐक्टर भौतिकी पर कार्य कर रहे हैं।

संस्थान भारत सरकार के साथ एक अनुसंधान रिऐक्टर की स्थापना के संबंध में बातचीत कर रहा है क्योंकि इसके बगैर हमारा अनुसंधान और अध्यापन कार्य पूरा नहीं किया जा सकता। परंतु इसके लिए एक अन्य संस्थान की आवश्यकता होगी और साथ ही जो अनुदान प्राप्त होता है उससे कहीं अधिक अनुदान की जरूरत होगी।

(जी) **पोस्ट एम.एससी. अध्यापन अनुभाग**—न्यूक्लीय विज्ञान में सहयोगिता (एसोसिऐटशिप) पाठ्यक्रम जिसका पूर्ण विवरण हमारे नए बुलेटिन में दिया गया है, इसलिए चलाया गया है कि साधारण विद्यार्थियों को जिन्होंने भौतिकी, गणित अथवा रसायन में एम.एससी. की उपाधि ली है उन्हें न्यूक्लीय विज्ञान में और अधिक प्रशिक्षण दिया जाए ताकि वे इस निरंतर बढ़ते हुए क्षेत्र में अनुसंधान एवं तकनीकी कार्य कर सकें। इस पाठ्यक्रम की आवश्यकता हम लोगों को पांच वर्ष पूर्व जान पड़ी थी पर हम इस पाठ्यक्रम को स्थापित करने के लिए 1953 में ही भारत सरकार को सहमत कर सके। यह अनुभाग रीडर डा. शांतिमय चटर्जी के अंतर्गत है।

यह विनम्रतापूर्वक कहा जा सकता है कि संयुक्त राज्य अमेरिका तथा रूस में पाठ्यक्रम की आवश्यकता जान पड़ी है जैसा कि फिजिकल सोसाइटी लंदन के सामने प्रो. मैसी और प्रो. बूलेकेट के हाल के भाषणों से स्पष्ट मालूम होता है। मास्को विश्वविद्यालय ने भी न्यूक्लीय विज्ञान में एक पाठ्यक्रम स्थापित किया है और गत जुलाई में इसे देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई थी।

अब हम अपने पोस्ट एम.एससी. पाठ्यक्रम में 20 छात्र ले सकते हैं और भारत सरकार से समझौते के अनुसार हमें इसमें से आधे छात्र पश्चिम बंगाल से बाहर के लेने पड़ते हैं। हम लोग इसे पिछले तीन वर्षो से कर रहे हैं और यह संतोष की बात है कि इनमें से अनेक छात्र हमारे संस्थान में लिए जा रहे हैं। हम लोग स्थान में 8000वर्ग फुट की वृद्धि करने जा रहे हैं और आशा करते हैं कि स्थान में इस वृद्धि से न केवल हम और अधिक अनुसंधान बढ़ा सकेंगे वरन छात्रों को भी अधिक संख्या में भर्ती कर सकेंगे। बीस स्थानों के लिए हमें प्रतिवर्ष 200 छात्रों के आवेदनपत्र प्राप्त होते हैं जिससे हम लोगों के काम की महत्ता प्रकट होती है।

कुशल नौजवानों को इस प्रयोगशाला में न्यूक्लीय विज्ञान के आधुनिकतम विधियों की शिक्षा दी जाती है। उनकी शिक्षा का स्तर अमेरिका एवं यूरोप के विश्वविद्यालयों जितना उच्च होता है। और हमें आशा है कि भविष्य में उन्हें यथेष्ट उपलब्धि प्राप्त होगी जिससे द्रुत गति से विस्तृत होते हुए विज्ञान की इस शाखा में हमारे ज्ञान भंडार की वृद्धि होगी जिसका महत्व मानव जाति के भविष्य के लिए भली भांति विदित है।

परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम में तेजी

से विस्तार हो रहा है और हमें आशा है कि देश को हमारे सहयोगियों को कार्य देने में कठिनाई नहीं होगी।

इस संबंध में मैं न्यूक्लीय भौतिकी संस्थान और कलकत्ता विश्वविद्यालय के संबंधों पर प्रकाश डालना चाहता हूं। संस्थान की वृद्धि पालित प्रोफेसर के कार्यों से हुई और इसलिए यह उचित ही था कि पालित संचालन समिति इस संस्थान की व्यवस्था से संबंधित रहती। पर जो वर्तमान स्थिति है उसमें केवल 32,000रुपए पालित कोष से मिलते हैं जो कुल व्यय का अति न्यून भाग है और जिसका अधिकांश भाग भारत सरकार द्वारा दिया जाता है। हमारी बड़ी इच्छा है कि पालित संचालन समिति से ऐतिहासिक और शैक्षणिक संबंध बना रहे। पर यदि यह टूट गया तब तमाम प्रशासन एवं संचालन भारत सरकार के हाथ में चला जाएगा। जिससे कुछ सीमा तक शैक्षणिक वायुमंडल खराब हो जाएगा। हम लोगों की राय में इससे संस्थान की प्रगति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा जिसकी सीमा का इस समय अनुमान लगाना कठिन है। अतएव हम आशा करते हैं कि जो अनुदान हमें पालित कोष से मिल रहा है वह जारी रहेगा और पालित प्रोफेसर का पद संस्थान में बना रहेगा, पर पालित ट्रस्ट में निहित इस अनुबंध के साथ कि प्रोफेसर स्वयं अपने अनुसंधान मार्ग पर अनुसरण करेगा जब तक कि यह न्यूक्लीय भौतिकी में है। इस बात में हम केवल सुझाव दे सकते हैं, निर्णय तो पालित संचालन समिति ही ले सकती है।

अब हम कुछ ऐसी बातें करना चाहते हैं जिसका प्रयत्न हमारे लिए इस दिशा में संभव नहीं है।

हमारे संस्थान का लक्ष्य 'न्यूक्लीय विज्ञान के नियमों को प्राप्त करना' है। न्यूक्लीय विज्ञान एक बिल्कुल नवीन संसार है। इस समस्या के साथ न्यूक्लीय वैज्ञानिक ठीक उसी प्रकार संघर्षरत हैं जैसे खगोल शास्त्री गतिकी एवं न्यूटन के सार्वभौम गुरुत्वाकर्षण के नियमों के अनुसंधान के पूर्व ग्रहों की समस्याओं से थे। आशा की जाती है कि अस्थिर कणों, π एवं μ मेसानों, θ मेसानों और हाइपेरानों अध्ययन से प्राप्त गुणधर्म जो ब्रह्मांड किरण पर कार्य से मिल रहे हैं इन नियमों की गवेषणा में अतिलाभकारी सिद्ध होंगे। पर ये प्राथमिक ब्रह्मांड किरणों में पाए जाने वाले बिलियन वोल्ट प्रोटानों और α कणों तथा हमारे वायुमंडल में पाए जाने वाले अणुओं के संखह से प्राप्त होते हैं। परंतु क्या इतनी उच्च ऊर्जा के कण प्रयोगशाला में उत्पन्न किए जा सकते हैं ताकि प्रयोग हमारे नियंत्रण में हों।

इस कार्य के लिए बिलियन-वोल्ट जनित्र निर्मित किए जा रहे हैं। सबसे पहला बुक हैवन राष्ट्रीय प्रयोगशाला में कास्मोट्रान था जो प्रोटोनों को 2.3 Bev तक त्वरित करता है। इन कणों की सहायता से वे सभी अस्थिर कणों को पाने में सक्षम हो सके हैं।

अद्यतन विजय कैलिफोर्निया के

विकिरण प्रयोगशाला को मिली है जिसने बेवाट्रन का निर्माण कर प्रोट्रान को 6 Bev तक त्वरित किया है। इस यंत्र की सहायता से, जिसपर 45 करोड़ रुपए का खर्च आया है, वे प्रति-प्रोट्रान उत्पन्न करने के समर्थ हुए हैं। प्रति प्रोटान, ऋणात्मक आवेश के साथ प्रोट्र न होते हैं और इस प्रकार अंशतः डि ाक की एंटी-मैटर (प्रति द्रव्य) के सिद्धांत को साबित करते हैं जिसमें न्यूक्लीय में ऋणात्मक आवेश होता हैं और जो घनात्मक इलेक्ट्रानों से घिरे रहते हैं। यह जानकारी रोचक होगी कि प्रोट्रान और एंटी प्रोटान जब एक साथ मिलते हैं तब कैसा व्यवहार करते हैं।

मुझे डा. टोपसुइयेव, यू.एस.एस. आर. के सचिव से जो इन दिनों भारत में हैं मालूम हुआ है कि रूस 10 विलियन वोल्ट बेवाट्रान बना रहा है जो अगस्त 1956 तक तैयार हो जाएगा।

ऐसे उपकरण का निर्माण भारत की क्षमता के बाहर है, पर हमारे थोड़े संसाधनों से भी न्यूक्लीय विज्ञान की कुछ रोचक समस्याओं से संघर्ष करना संभव है जैसा कि पिछले कुछ वर्षो के नोबेल पुरस्कार से प्रदर्शित हुआ है।

अनुक्रमणिका

शिवम् ऑफसैट प्रेस, ए-12/1, नरायणा इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली 110 028 द्वारा मुद्रित